नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-४१/१

ओघनिर्युक्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-४१/१

आगमसूत्र-४१/१- 'ओघनिर्युक्ति'

मूलसूत्र-२/१- हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	मंगल और प्रस्तावना	०५	६	प्रतिसेवना द्वार	४५
२	प्रतिलेखना द्वार	०६	७	आलोचना द्वार	४५
३	पिंड द्वार	२७	८	विशुद्धि द्वार	४६
४	उपधिप्रमाण द्वार	४०	९	उपसंहार	४७
५	अनायतनवर्जन द्वार	४४	---		

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बूक्स
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્ત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	516
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	085
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	601

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કૂલ પાના 1,35,500

[४१/१] ओघनिर्युक्ति
मूलसूत्र-२/१- हिन्दी अनुवाद

अरहंत को नमस्कार हो, सिद्ध को नमस्कार हो, आचार्य को नमस्कार हो, उपाध्याय को नमस्कार हो । इस लोक में रहे सर्व साधु को नमस्कार हो ।

इन पाँच को किया गया नमस्कार सारे पाप का नाशक है । सर्व मंगल में उत्कृष्ट मंगल है ।

सूत्र – १-३

उपक्रम काल दो प्रकार से है । सामाचारी उपक्रम काल और यथायुष्क उपक्रम काल (*यहाँ उपक्रम का अर्थ वृत्ति में किया है । ''दूर हो उसे, समीप लाना वो''*) और सामाचारी उपक्रमकाल तीन प्रकार से है – १. ओघ, २. दशधा, ३. पदविभाग । उसमें ओध और दशधा सामाचारी उन नौं में पूर्व में रहे तीसरे आचार वस्तु के बीसवे ओघ प्राभृत में रही थी । साधु के अनुग्रह के लिए वहाँ से यहाँ लाई गई इसलिए उसे उपक्रम कहते हैं । वो उपक्रम काल पूर्वे बीस वर्ष का था और जो हाल दीक्षा के पहले दिन ही दे सकते हैं । अब मंगल के आरम्भ के लिए नीचे दी गई गाथा बताते हैं ।

सूत्र – ४-५

अरहंत को वंदन करके, चौदह पूर्वी और दशपूर्वी को वंदन करके, ग्यारह अंग को सूत्र-अर्थ सहित धारण करनेवाले सभी साधुओं को वंदन करके चरण-करण अनुयोग में से अल्प अक्षर और महान अर्थवाली ओघ से निर्युक्ति साधुओं के अनुग्रह के लिए कहता हूँ ।

सूत्र – ६

ओघ का जो समूह वो समास से, संक्षेप में एकी भाव से मिला है । काफी अर्थ-गम से युक्त या बद्ध हो उसे निर्युक्ति कहते हैं । यानि यहाँ समास संक्षेप से एकी भाववाले कईं अर्थ और गम जुड़े हुए हैं । बद्ध हुए हैं वो 'ओहनिज्जुत्ति' ।

सूत्र – ७

(चरण सितरी के सत्तर भेद) पाँच व्रत, दश श्रमण धर्म, १७ प्रकार से संयम, १० प्रकार से वेयावच्च, नौ प्रकार से ब्रह्मचर्य, ज्ञानादित्रिक, १२ प्रकार से तप, क्रोधादि निग्रह ।

सूत्र – ८

(करण सितरी के सत्तर भेद) पिंड़ विशुद्धि–४, भेद से, ५ समिति, १२ भावना, १२ प्रतिमा, ५ इन्द्रिय निग्रह, २५ पड़िलेहणा, ३ गुप्ति, ४ अभिग्रह ।

सूत्र – ९-१५

यहाँ षष्ठी की बजाय पाँचवी विभक्ति क्यों बताई है ? ऐसे सवाल का भाष्य में खुलासा है कि चरणकरणा-नुयोग सम्बन्धी ओघ निर्युक्ति मैं बताऊंगा वहाँ पंचमी विभक्ति का प्रयोजन यह है कि चरणकरणानुयोग के अलावा भी योग है । वो इस प्रकार – चरणकरणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग वो चार अनुयोग हैं । यह चारों एक-एक से बढ़के हैं । चारों अनुयोग स्वविषय में तो ताकतवर हैं ही । तो भी चरणानुयोग बलवान है । चारित्र के रक्षण के लिए ही दूसरे तीन अनुयोग हैं । चारित्र की प्रतिपत्ति के आशय से धर्मकथा रूप कलासमूह प्रव्रज्या आदि के दान के लिए, द्रव्यानुयोग दर्शन शुद्धि के लिए है क्योंकि दर्शनशुद्धि से चारित्रशुद्धि है । जिस प्रकार एक राजा के प्रदेश में चार खदान थी । एक रत्न की, दूसरी सोने की, तीसरी चाँदी की, चौथी लोहे की । चारों पुत्रों को एक-एक खदान बाँट दी थी । लोहे की खदान वाले को फिक्र हुई कि मुझे तो फिझूल खदान मिली (तब मंत्रीने समझाया कि) दूसरी तीनों खदाने लोहे पर सहारा रखती है । वो सब तुम्हारे पास लोहा माँगने के लिए

आए तब रत्न, सोना और चाँदी के बदले में तुम लोहा देना (तू धनवान बन जाएगा) उस प्रकार से चारित्र में समर्थ हो तो बाकी के अनुयोग ग्रहण करना सरल है । इसलिए चरणानुयोग सबसे ताकतवर हैं ।

सूत्र – १६-१७

(*चरणानुयोग में अल्प अक्षर होने के बावजूद अर्थ से महान-विस्तृत है* ।) यहाँ चऊभंगी है । अक्षर कम बड़े अर्थ, अक्षर ज्यादा कम अर्थ । दोनों ज्यादा या दोनों कम उसमें ओघ समाचारी प्रथम भंग का दृष्टांत है । ज्ञाताधर्म कथा दूसरे भंग का, दृष्टिवाद तीसरे भंग का क्योंकि वहाँ अक्षर और अर्थ दोनों ज्यादा हैं । लौकिक शास्त्र चौथे भंग का दृष्टांत है ।

सूत्र – १८-१९

बाल जीव की अनुकंपा से जनपद को अन्नबीज दिए जाए उस प्रकार से स्थविर उस साधु के अनुग्रह के लिए ओघनिर्युक्ति वर्तमान काल अपेक्षा से इस (अब फिर कहलाएंगे) पद हिस्से के रूप में ओघनिर्युक्ति उपदिष्ट की है । (*यहाँ स्थविर यानि भद्रबाहु स्वामी समझना* ।)

सूत्र – २०

ओघनिर्युक्ति के सात द्वार बताए हैं । प्रतिलेखना, पिंड़, उपधि प्रमाण, अनायतन वर्जन, प्रतिसेवना, आलोचना और विशुद्धि ।

सूत्र – २१

आभोग, मार्गणा, गवेषणा, ईहा, अपोह, प्रतिलेखना, प्रेक्षणा, निरीक्षणा, आलोकना और प्रलोकना (एकार्थिक नाम हैं ।)

सूत्र – २२

जिस प्रकार 'घड़ा' शब्द कहने से कुम्हार घड़ा और मिट्टी आ जाए ऐसे यहाँ भी प्रतिलेखना पड़िलेहण करनेवाले साधु, प्रतिलेखना और प्रतिलेखितव्य –पड़िलेहण करने की वस्तु, तीनों की यहाँ प्ररूपणा की जाएगी।

सूत्र – २३-२७

प्रतिलेखक – एक हो या अनेक हो, कारणिक हो या निष्कारणिक, साधर्मिक हो या वैधर्मिक ऐसा संक्षेप से दो प्रकार से जानना उसमें अशिव आदि कारण से अकेले जाए तो कारणिक, धर्मचक्र स्तुप, यात्रादि कारण से अकेले जाए तो निष्कारणिक उसमें एक कारणिक यहाँ कहलाएगा उसके अलावा सभी को स्थित समझना । अशिव, अकाल, राजा का भय, क्षोभ, अनशन, मार्ग भूलना, बिमारी, अतिशय, देवता के कहने से और आचार्य के कहने से इतने कारण से अकेले हो तब वो कारणिक कहलाते हैं । बारह साल पहले खयाल आता है कि अकाल होगा । तो विहार करके सूत्र और अर्थ पोरिसि से दूसरे सूखे प्रदेश में जाए । इस अकाल का पता अवधि ज्ञानादि अतिशय से, निमित्त ज्ञान से शिष्य का वाचना के द्वारा बताए कि जैसे या जब अन्य से पता चले तब विहार करे । या ग्लानादि कारण से नीकल न सके ।

सूत्र – २८-२९

साधु भद्रिक हो – गृहस्थ न हो, गृहस्थ भद्रिक हो लेकिन साधु न हो, दोनो भद्रिक हो या एक भी भद्रिक न हो । दूसरी चऊभंगी साधु भद्रिक हो लेकिन गृहस्थ तुच्छप्रान्त हो, गृहस्थ भद्रिक हो लेकिन साधु तुच्छप्रान्त हो, दोनो प्रान्त हो, दोनो भद्रिक हो । उसमें दोनो भद्रिक हो तब विहार करके उपसर्ग न हो वहाँ जाए । अशिव प्राप्त (ग्लान) साधु को तीन परम्परा से भोजन देना । एक ग्रहण करे । दूसरा लाए, तीसरा अवज्ञापूर्वक दे । ग्लान की देखभाल के लिए रूके हो तब उसे विगई, नमक, दशीवाला वस्त्र और लोहस्पर्श उन चार का वर्जन करना चाहिए ।

सूत्र – ३०-३२

उपद्रव प्राप्त साधु को उद्वर्तन या निर्लेप-करनेवाले साधु ने दिन में या रात को साथ में न रहना । जो

ड़रपोक हो उसे सेवा के लिए न रखे । लेकिन वहाँ निर्भय को रखे । जहाँ देवता का उपद्रव हो वहाँ गोचरी के लिए न जाए । यदि ऐसे घर न मिले तो गोचरी देनेवाले के साथ नजर न मिलाए । अशिव न हो यानि निरुपद्रव स्थिति में जो अभिग्रह – तप ग्रहण किए हो उसमें वृद्धि करे । यदि सेवा करनेवाले को जाना पड़े तो अन्य समान सामाचारीवाले को वो उपद्रव युक्त साधु के पास रख के जाए । साधु न हो तो दूसरों को भी सौंपकर अन्यत्र जाए । शायद उस उपद्रववाले साधु आक्रोश करे तो समर्थ साधु वहाँ रहना चाहे तो उसे कहकर जल्द नीकल जाना। यदि न चाहे तो उस दिन रहकर समय मिलते ही छिद्र ढूँढ़कर सभी को आधे को या अन्त में एक-एक करके भी नीकले

सूत्र – ३३-३४

विहार करते समय संकेत करके सभी नीकले और जहाँ इकट्ठे हो वहाँ जो गीतार्थ को उसके पास आलोचना करे । यदि सौम्यमुखी देवता हो तो उसी क्षेत्र में उपद्रव करे इसलिए दूसरे क्षेत्र में जाना चाहिए । कालमुखी देवता हो तो चारों दिशा के दूसरे क्षेत्र में भी उपद्रव करे तो तीसरे क्षेत्र में जाना चाहिए । रक्ताक्षी देव चारों दिशा के तीसरे क्षेत्र में भी उपद्रव करे तो चौथे क्षेत्र में जाना चाहिए । यहाँ जो अशिव यानि देव उपद्रव के लिए कहा । (अशिवकारण पूरा हुआ) वो ही विधि दुर्भक्ष के लिए भी जाननी चाहिए । जैसे गाय के समूह को थोड़े से घास में तृप्ति न हो तो अलग अलग जाए ऐसे अकाल में अकेले साधु को अलग-अलग नीकल जाना चाहिए । (दुर्भिक्ष कारण पूरा हुआ ।)

सूत्र – ३५-३७

राज्य की ओर से चार प्रकार से भय हो, वसति न दे, आहार पानी न दे, वस्त्र-पात्र छीन ले, मार डाले, उसमें अन्तिम दो भेद वर्तते हो तब राज्य में से नीकल जाए । यह राज्य भय के कारण बताता है कि यदि कोई साधु के लिबास में प्रवेश करके किसी को मार डाला हो, राजा साधु के दर्शन अमंगल मानता हो, कोई राजा को चड़ाए कि साधु तुम्हारा अहित करनेवाले हैं । राजा के निषेध के बावजूद भी किसी को दीक्षा दी हो । राजा के अंतःपुर में प्रवेश करके अकृत्य सेवन किया हो, किसी वादी साधुने राजा का पराभव किया हो । (इस कारण से राज्यभय पाते हुए साधु विहार करे और चारित्र या जीवित नाश का भय हो तो एकाकी बने ।)

सूत्र – ३८

क्षोभ से एकाकी बने । – भय या त्रास । जैसे कि उज्जैनी नगरी में चोर आकर मानव आदि का हरण कर लेते थे । किसी दिन रेंट की माला कुए में गिर पड़ी तब कोई बोला कि, ''माला पतिता'' दूसरे समझे कि ''मालवा पतिता'' मालवा के चोर आए । ड़र के मारे लोगोंने भागना शुरू किया । इस प्रकार से साधु भय या त्रास से अकेला हो जाए ।

सूत्र – ३९

अनशन से एकाकी बने । अनशन गृही साधु को कोई निर्यामणा करवानेवाला न मिले या संघाटक न मिले और उसे सूत्र-अर्थ पूछना हो तो अकेला जाए ।

सूत्र – ४०

स्फिटित – रास्ते में दो मार्ग आते हैं । वहाँ गलती से मंदगति से चलने से या पर्वत आदि न चड़ सकने से फिर से आने के कारण से साधु एकाकी बने ग्लान – बिमार साधु निमित्त से औषध आदि लाने के लिए या अन्य जगह पर बिमार साधु की सेवा करनेवाला कोई न हो और जाना पड़े तब एकाकी बने ।

सूत्र – ४१

कोई अतिशय सम्पन्न जाने या नवदीक्षित को उसके परिवारजन घर ले जाने के लिए आते हैं तब संघाटक की कमी से अकेले विहार करवाए, देवता के कहने से विहार करे तब एकाकी बने जिसके लिए कलिंग में देवी के रूदन का अवसर बताया है ।

सूत्र – ४२-४५

अन्तिम पोरिसी में आचार्य ने कहा कि तुम्हें अमुक जगह जाना चाहिए । ओघ आशय से मात्रक लाने के लिए कहा उसके लिए ग्रन्थि दी कि तुम्हें भय न हो । यहाँ उसको अपने गण की परीक्षा लेनी थी इसलिए सभी को बुलाया । मुझे कुछ गमन कार्य है । कौन जाएगा ? सभी जाने के लिए तैयार हुए तब आचार्य ने कहा कोई यह समर्थ है इसके लिए उसे जाना चाहिए तब साधु ने कहा कि आपने मुझ पर अनुग्रह किया ।

उस कार्य के लिए साधु को जल्दी जाना हो तो स्वाध्याय करके या बिना किए सोते समय आचार्य को बोले कि आपने बताए हुए काम के लिए मैं सुबह को जाऊंगा, ऐसा न बोले तो दोष लगे । पूछे तो शायद आचार्य को स्मरण हो कि मुझे तो दूसरा काम बताना था या जिसके लिए भेजना या वो साधु आदि तो कहीं गए हैं । या संघाटक कहकर जाए कि यह साधु तो गच्छ छोड़कर चला जाएगा । तब आचार्य समयोचित्त विनती करे । सुबह में जानेवाले साधु गुरु वंदन के लिए पाँव को छूए और आचार्य जगे या ध्यान में हो तो ध्यान पूरा हो तब कहे कि आपने बताए हुए काम के लिए मैं जाता हूँ ।

सूत्र – ४६-४८

अनुज्ञा प्राप्त साधु विहार करे तब नीकलते समय अंधेरा हो तो उजाला हो तब तक दूसरा साधु साथ में जाए । मल-मूत्र की शंका हो तो गाँव के नजदीक शंका के समय यदि शर्दी, चोर, कुत्ते, शेर आदि का भय हो, नगर के द्वार बन्द हो, अनजान रास्ता हो तो सुबह तक इन्तजार करे । यदि जानेवाले साधु को भोजन करके जाना हो तो गीतार्थ साधु संखडी या स्थापना कुल में से उचित दूध के सिवा घी आदि आहार लाकर दे । उसे खा ले । यदि वसति में न खाना हो तो साथ में लेकर विहार करे और दो कोश में खा ले ।

सूत्र – ४९

गाँव की हद पूरी होती हो रजोहरण से पाँव की प्रमार्जना करे । पाँव प्रमार्जन करते समय वहाँ रहे किसी गृहस्थ चल रहा हो, अन्य कार्य में चित्तवाला हो, साधु की ओर नजर न हो तो पाँव प्रमार्जन करे, यदि वो गृहस्थ देख रहा हो तो पाँव प्रमार्जन न करे, निषद्या-आसन से प्रमार्जन करे ।

सूत्र – ५०-५७

पुरुष-स्त्री-नपुंसक इन तीनों के बुढ़े मध्यम और युवान ऐसे तीन भेद हैं । उसमें दो साधर्मिक या दो गृहस्थ को रास्ता पूछे । तीसरा खुद तय करे । साधर्मिक या अन्यधर्मी मध्यम वय को प्रीतिपूर्वक रास्ता पूछे । दूसरों को पूछने में कईं दोष की संभावना है । जैसे कि – वृद्ध नहीं जानते । बच्चे प्रपंच से झूठा रास्ता दिखाए, मध्यम वयस्क स्त्री या नपुंसक को पूछने से शक हो कि 'साधु' इनके साथ क्या बात कर रहे हैं ? वृद्ध-नपुंसक या स्त्री, बच्चे-नपुंसक या स्त्री चारो मार्ग से अनजान हो ऐसा हो सकता है । पास में रहनेवालेको पास जाकर रास्ता पूछे । कुछ पगले उनके पीछे जाकर पूछे और यदि चूप रहे तो रास्ता न पूछे । रास्ते में नजदीक रहे गोपाल आदि को पूछे लेकिन दूर हो उसे न पूछे । क्योंकि उस प्रकार से पूछने से शक आदि दोष एवं विराधना का दोष लगे । यदि मध्यम वयस्क पुरुष न हो तो दृढ़ स्मृतिवाले वृद्ध को और वो न हो तो भद्रिक तरुण को रास्ता पूछे ? उस प्रकार से क्रमशः प्राप्त स्त्री वर्ग को नपुंसक को स्थिति अनुसार पूछे । ऐसे कईं भेद हैं ।

सूत्र – ५८-६२

रास्ते में छ काय की जयणा के लिए कहते हैं–पृथ्वीकाय तीन भेद से है । सचित्त, अचित्त और मिश्र, इन तीनों के भी – काला-नीला आदि वर्ण भेद से पाँच-पाँच पेटा पद, उसमें अचित्त पृथ्वी में विचरण करना । अचित्त पृथ्वी में भी गीली और सूखी दोनों हो तो गीले में जाने से विराधना होती है । श्रम लगना और गंदकी चिपकती है । सूखे में भी मिट्टीवाला और मिट्टी रहित मार्ग होता है । मिट्टीवाले मार्ग में दोष लगे उसके लिए मिट्टी रहित मार्ग में जाना चाहिए । गीला मार्ग भी तीन प्रकार से है । 'मधुसिक्थ' – पाँव का तलवा तक दलदल 'पिंड़क' पाँव में भोजे पहने हो उतना दलदल और 'चिक्खिल्ल' गरक जाए उतना कीचड़ और फिर सूखे रास्ते में भी ''प्रत्यपाय'' नाम

का दोष है । जंगली जानवर, कूत्ते, चोर, काँटा, म्लेच्छ आदि प्रत्यपाय दोष हैं । सुष्क रास्ते के दो भेद – आक्रांत और अनाक्रांत । आक्रांत मार्ग के दो भेद । प्रत्यापाय और अप्रत्यापाय । प्रत्यापाय दोषवाले मार्ग में न जाते हुए अप्रत्यापाय मार्ग में जाए, मार्ग न मिले तो मिट्टीवाले मार्ग में, वो न मिले तो गीली पृथ्वीवाले मार्ग में, वो न हो तो मिश्र, वो न हो तो सचित्त ऐसे गमन करना चाहिए ।

सूत्र – ६३-६५

शर्दी-गर्मी में रजोहरण से पाँव प्रमार्जन करे । बरसात में पादलेखनिका से प्रमार्जन करे । यह पाद लेखनिका उदुम्बर वड़ या इमली के पेड़ की बनी बारह ऊंगली लम्बी और एक अंगुल मोटी होती है । दोनों और धारवाली कोमल होती है । और फिर हर एक साधु की अलग-अलग होती है । एक ओर की किनार से पाँव में लगी हुई सचित्त पृथ्वी को दूर करे दूसरी ओर से अचित्त पृथ्वी को दूर करे ।

सूत्र – ६६-७०

अप्काय दो प्रकार से है । भूमि का पानी और आकाश का पानी । आकाश के पानी के दो भेद धुम्मस और बारिस । यह दोनों देखकर बाहर न नीकले । नीकलने के बाद जैसे कि नजदीकी घर या पेड़ के नीचे खड़ा रहे। यदि वहाँ खड़े रहने में कोई भय हो तो 'वर्षाकल्प' बारिस के रक्षा का साधन ओढ़कर जाए । ज्यादा बारिस हो तो सूखे पेड़ पर चड़ जाए । यदि रास्ते में नदी आ जाए तो दूसरे रास्ते से या पुल पर से जाए । भूमि पर पानी हो तब प्रतिपृच्छा करके जाना, यह सब एकाकी नहीं है । परम्परा प्रतिष्ठ है । यदि नदी का पुल या अन्य कच्चा रास्ता हो, मिट्टी गिर रही हो, अन्य किसी भय हो तो उस रास्ते से नहीं जाना, प्रतिपक्षी रास्ते से जाना । यानि निर्भय या आलम्बन वाले रास्ते से या उस प्रकार के अन्य रास्ते से जाना । चलमान, अनाक्रान्त, भयवाला रास्ता छोड़कर अचल, आक्रान्त और निर्भय रास्ते से जाना, गीली मिट्टी का लेप हुआ हो तो नजदीक से पाँव को प्रमार्जन करना, पानी तीन भेद से बताया है । पत्थर पर से बहनेवाला, दलदल पर से बहनेवाला, मिट्टी पर से बहनेवाला । इन तीनों के दो भेद हैं, आक्रांत ओर अनाक्रांत । आक्रांत के दो भेद सप्रत्यपाय और अप्रत्यपाय क्रमशः पाषाण पर से बहता पानी फिर दलदल पर से... उस प्रकार से रास्ता पसंद करना ।

सूत्र – ७१-७६

आधी जंघा जितने पानी को संघट्ट कहते हैं, नाभि प्रमाण पानी को लेप और नाभि के ऊपर पानी हो तो लेपोपरी कहते हैं । संघट्ट नदी उतरने से एक पाँव पानी में और दूसरा पाँव ऊंचा रखें । उसमें से पानी बह जाए फिर वो पाँव पानी में रखे और पहला पाँव ऊपर रखे । उस प्रकार सामने के किनारे पहुँचे । फिर (इरियावही) कायोत्सर्ग करे । यदि निर्भय जल हो तो गृहस्थ स्त्री आदि उतर रहे हो तो पीछे-पीछे जाए । लयवाला पानी हो तो चौलपट्टे को ऊपर लेकर गाँठ बाँधे । लोगों के बीच उतरे क्योंकि शायद पानी में खींचे जाए तो लोग बचा ले । तट पर जाने के बाद चोलपट्टे का पानी बह जाए तब तक खड़ा रहे । यदि भय हो तो गीले चोलपट्टे को शरीर को न छूए उस प्रकार से लटकाकर रख के आगे जाए । नदी में उतरने से यदि वहाँ गृहस्थ न हो तो शरीर से चार अंगुल उपर लकड़ी से पानी नापे । यदि ज्यादा पानी हो तो उपकरण इकट्ठे करके बाँधे और बड़ा पात्र उल्टा करके शरीर के साथ बाँधकर तैरकर सामने के किनारे जाए । यदि नाँव में बैठकर उतरना पड़े तो संवर यानि पच्चक्खाण करे, नाँव के बीच बैठे, नवकार स्मरण करे और किनारे पर उतरकर इरियावही करे । उतरते समय पहला या बाद में न उतरे लेकिन बीच में उतरे और पचीस श्वासोच्छवास प्रमाण काऊसग्ग करे । यदि नाँव न हो तो लकड़े या तुँब के सहारे से नदी पार करे

सूत्र – ७७

रास्ते में जाते हुए वनदव लगा हो तो अग्नि आगे हो तो पीछे जाना, सामने आ रहा हो तो तृण रहित भूमि में खड़े रहना, तृण रहित भूमि न हो तो कंबल गीला करके ओढ़ ले और यदि ज्यादा अग्नि हो तो चमड़ा ओढ़ ले या उपानह धारण करके जाए ।

सूत्र – ७८

यदि काफी हवा चल रही हो तो खदान में या पेड़ के नीचे खड़े रहे । यदि वहाँ खड़े रहने में भय हो तो छिद्र रहित कँबल ओढ़ ले और किनार लटके नहीं ऐसे जाना ।

सूत्र – ७९

वनस्पति तीन प्रकार से है । सचित्त, अचित्त, मिश्र । वो भी प्रत्येक और सामान्य दो भेद से हो । वो हर एक स्थिर और अस्थिर भेद से होते हैं । उसके भी चार-चार भेद हैं । दबी हुई-भयरहित, मसली हुई-भययुक्त, न मसली हुई-भयरहित, न मसली हुई-भययुक्त उसमें सचित्त, प्रत्येक, स्थिर, आक्रान्त और भय रहित वनस्पति में जाना । यदि ऐसा न हो तो स्थिति के अनुसार व्यवहार करना ।

सूत्र – ८०

बेइन्द्रिय जीव सचित्त, अचित्त, मिश्र तीन भेद से बताए हैं । उसके स्थिर संघयण दो भेद उन हरएक के आक्रान्त, अनाक्रान्त, सप्रत्यपाय (भययुक्त) और अप्रत्यपाय (भय रहित) ऐसे चार भेद बताए हैं । उसी प्रकार तेइन्द्रिय, चऊरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के लिए समझना, उसमें अचित्त त्रसवाली भूमि में जाना ।

सूत्र – ८१-८३

पृथ्वीकाय और अप्काय वाले दो रास्ते में से पृथ्वीकाय में जाना, पृथ्वी और वनस्पतियुक्त मार्ग हो तो पृथ्वीकाय में जाना, पृथ्वी-त्रस-वनस्पति हो तो त्रसरहित पृथ्वी मार्ग में जाना, अप्काय, वनस्पतिकाय वाला मार्ग हो तो वन के रास्ते में जाना तेऊ-वाऊ के अलावा भी अन्य स्थिति है उसके लिए संक्षेप में कहा जाए तो कम से कम विराधनावाले मार्ग में जाना चाहिए ।

सूत्र – ८४-८५

सभी जगह संयम रक्षा करना । संयम से भी आत्मा की रक्षा करना । क्योंकि जिन्दा रहेगा तो पुनः तप आदि से विशुद्धि कर लेना । संयम के निमित्त से देह धारण किया है । यदि देह ही न हो तो संयम का पालन किस प्रकार होगा ? संयम वृद्धि के लिए शरीर का पालन इष्ट है ।

सूत्र – ८६-९८

लोग भी दलदल, शिकारी, जानवर, कुत्ते, पथरीला कँटवाला और काफी पानी हो ऐसे रास्ते का त्याग करते हैं । तो फिर साधु में और गृहस्थ में क्या फर्क ? गृहस्थ जयणा या अजयणा को नहीं जानते । सचित्त, मिश्र – प्रत्येक या अनन्त को नहीं जानते । जीव वध न करना ऐसे पच्चक्खाण नहीं, जब साधु को यह प्रतिज्ञा और पता चलता है वो विशेषता है लोग मौत का भय और परीश्रम भाव से वो पथ छोड़ देते हैं । जब साधु दया के परिणाम से मोक्ष के आशयवाले होकर उपयोग से पथ को ग्रहण करते हैं या छोड़ देते हैं । जो कि बाहरी चीज को आश्रित करके साधु को हत्या-जन्य कर्मबंध नहीं होता । तो भी मुनि परिणाम की विशुद्धि के लिए पृथ्वीकाय आदि की जयणा करते हैं । यदि ऐसी जयणा न करे तो परिणाम की विशुद्धि किस प्रकार टिक पाए ? सिद्धांत में तुल्य प्राणीवध के परिणाम में भी बड़ा अंतर बताया है । तीव्र संक्लिष्ट परिणामवाले को सातवीं नरक प्राप्त हो और मंद परिणामवाला कहीं ओर जाए, उसी प्रकार निर्जरा भी परिणाम पर आधारीत है । इस प्रकार जो और जितने हेतु संसार के लिए हैं वो और उतने हेतु मोक्ष के लिए हैं । अतीत की गिनती करने बैठे तो दोनों में लोग समान आते हैं । रास्ते में जयणापूर्वक चले तो वो क्रिया मोक्ष के लिए होती है और ऐसे न चले तो वो क्रिया कर्मबंध के लिए होती है।

जिनेश्वर परमात्मा ने किसी चीज का एकान्त निषेध नहीं किया । ऐसे एकान्त विधि भी नहीं बताई । जैसे बिमारी में एक बिमारी में जिसका निषेध है वो दूसरे में विधि भी हो सकती है । जैसे क्रोध आदि सेवन से अतिचार होता है । वो ही क्रोध आदि भाव चंड़रूद्राचार्य की प्रकार शायद शुद्धि भी करवाते हैं । संक्षेप में कहा जाए तो बाहरी चीज को आश्रित करके कर्मबंध न होने के बावजूद साधु सदा जयणा के परिणाम पूर्वक जिन्दा रहे और

परिणाम की विशुद्धि रखे । लेकिन क्लिष्ट भाव या अविधि न करे ।

सूत्र – ९९-१००

पहला और दूसरा ग्लान यतना, तीसरा श्रावक, चौथा साधु, पाँचवी वसति, छठ्ठा स्थान स्थित (उस अनुसार प्रवेश विधि के बारे में बताते हैं । गाँव प्रवेश के प्रयोजन को बताते हुए कहते हैं कि उस विधि का क्या फायदा ?) इहलौकिक और परलौकिक दो फायदे हें । पृच्छा के भी दो भेद । उसके भी एक-एक आदि भेद हैं ।

सूचना –ओहनिज्जुत्ति में अब आगे जरुरी भावानुवाद है । उसमें कहीं पर निर्युक्ति भाष्य या प्रक्षेप का अनुवाद नहीं भी किया और कहीं द्रोणाचार्यजी की वृत्ति के आधार पर विशेष स्पष्टीकरण भी किए हैं । मुनि दीपरत्नसागर ।

सूत्र – १०१

इहलौकिक गुण – जिस काम के लिए साधु नीकला हो उस काम का गाँव में पता चले कि वो वहाँ से नीकल गए हैं, अभी कुछ जगह पर ठहरे हैं या तो मासकल्प आदि करके शायद उसी गाँव में आए हुए हों, तो इसलिए वही काम पूरा हो जाए ।

पारलौकिक गुण – शायद गाँव में किसी (साधु-साध्वी) बीमार हो तो उसकी सेवा की तक मिले । गाँव में जिन मन्दिर हो तो उनके दर्शन वंदन हो, गाँव में कोई वादी हो या प्रत्यनीक हो और खुद वादलब्धिसंपन्न हो तो उसे शान्त कर सके ।

सूत्र – १०२

पृच्छा – गाँव में प्रवेश करने से पृच्छा दो प्रकार से होती है । अविधिपृच्छा, विधिपृच्छा । अविधिपृच्छा – गाँव में साधु हैं कि नहीं ? साध्वी हो तो उत्तर मिले कि साधु नहीं है । 'साध्वी है कि नहीं ?' तो साधु हो तो उत्तर देनेवाला बोले कि 'साध्वी नहीं है ।' अलावा 'घोड़ा-घोड़ी' न्याय से शंका भी हो ।

सूत्र – १०३

श्रावक है कि नहीं ऐसा पूछे तो उसे शक हो कि 'इसे यहाँ आहार करना होगा ।' श्राविका विषय पूछे तो उसे शक हो कि जरुर यह बूरे आचारवाला होगा । जिनमंदिर का पूछे तो दूसरे **आ**चारवाले हो तो भी न बताए इससे तद्विषयक फायदे की हानि हो । इसलिए विधि पृच्छा करनी चाहिए ।

सूत्र – १०४-१०७

विधिपृच्छा – गाँव में आने-जाने के रास्ते में खड़े रहकर या गाँव के नजदीक या कूएं के पास लोगों को पूछे कि, ''गाँव में हमारा पक्ष है ?' उसको मालूम न हो तो पूछे कि, तुम्हारा पक्ष कौन-सा ? तब साधु बताए कि, जिनमंदिर, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका । यदि गाँव में जिनमंदिर हो तो पहले मंदिर में दर्शन कर के फिर साधु के पास जाए । सांभोगिक साधु हो तो वंदन करके सुखशाता पूछे । कहे कि, आपके दर्शन के लिए ही गाँव में आए हैं। अब हमारे काम पर जाते हो । यदि वहाँ रहे साधु ऐसा बोले कि, 'यहाँ साधु बीमार है, उसे औषध कैसे दे, वो हम नहीं जानते ।' आया हुआ साधु को यदि पता हो तो औषध का संयोजन बताए और व्याधि शान्त हो तब विहार करे

सूत्र – १०८-११३

ग्लानपरिचर्यादि – गमन, प्रमाण, उपकरण, शुकून, व्यापार, स्थान, उपदेश लेना ।

गमन – बीमार साधु में शक्ति हो तो वैद्य के वहाँ ले जाए । यदि शक्ति न हो तो दूसरे साधु औषध के लिए वैद्य के वहाँ जाए । **प्रमाण** – वैद्य के वहाँ तीन, पाँच या सात साधु को जाना । **सगुन** – जाते समय अच्छे सगुन देखकर जाना । **व्यापार** – यदि वैद्य भोजन करता हो, गुड़गुमड़ काटता हो तो उस समय वहाँ न जाना । **स्थान** – यदि वैद्य कचरे के पास खड़ा हो उस समय न पूछे, लेकिन पवित्र स्थान में बैठा हो तब पूछे । **उपदेश** – वैद्य को

यतनापूर्वक पूछने के बाद वैद्य जो कहे उसके अनुसार परिचर्या – सेवा करना । **लाना** – यदि वैद्य ऐसा कहे कि, बीमार को उठाकर वैद्य के वहाँ न ले जाना, लेकिन वैद्य को उपाश्रय में लाना ।

ग्लान साधु गाँव के बाहर ठल्ले जाता हो जाए तब तक वैयावच्च करे, फिर वहाँ रहे साधु यदि सहाय दे तो उनके साथ, वरना अकेले आगे विहार करे ।

सांभोगिक साधु हो तो, दूसरे साधु को सामाचारी देखते विपरीत परिणाम न हो उसके लिए, अपनी उपधि आदि उपाश्रय के बाहर रखकर भीतर जाए । यदि बीमारी के लिए रूकना पड़े तो, दूसरी वसति में रहकर ग्लान की सेवा करे । गाँव के पास गुजरनेवाला किसी पुरुष ऐसा कहे कि, 'तुम – ग्लान की सेवा करोगे ?' साधु कहे, 'हा करूँगा' वो कहे कि, 'गाँव में साधु ठल्ला, मात्रा से लीपिद है', तो साधु पानी लेकर ग्लान साधु के पास जाए और लोग देखे उस प्रकार से बिगड़े हुए वस्त्र आदि धुए ।

साधु वैद्यक जानता हो उस प्रकार से औषध आदि करे, न जानता हो तो वैद्य की सलाह अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल ओर भाव से वैयावच्च करे ।

ग्लान के कारण से एकाकी हुआ हो तो अच्छा होने पर उसकी अनुकूलता अनुसार साथ में विहार करे । निष्कारण एकाकी हुआ हो तो शास्त्र में बताये अनुसार ठपका दे ।

सूत्र – ११४-११८

गाँव में साध्वी रहे हो तो उपाश्रय के पास आकर बाहर से निसीहि कहे । यदि साध्वीयाँ स्वाध्याय आदि में लीन हो तो दूसरों के पास कहलाए कि 'साधु आए हैं' यह सुनकर साध्वी में मुखिया साध्वी स्थविरा वृद्ध हो तो दूसरे एक या उस साध्वी के साथ बाहर आए यदि तरूणी हो तो दूसरी तीन या चार वृद्ध साध्वी के साथ बाहर आए। साधु को अशन आदि निमंत्रणा करे । फिर साधु साध्वीजी की सुखशाता पूछे । किसी प्रकार की बाधा हो तो साध्वीजी बताए । यदि साधु समर्थ हो तो प्रत्यनीक आदि का निग्रह करे, खुद समर्थ न हो, तो दूसरे समर्थ साधु को भिजवा दे । किसी साध्वी बीमार हो तो उसे औषधि आदि की बिनती करे । औषध का पता न हो तो वैद्य के वहाँ जाकर लाए और साध्वी उस प्रकार सबकुछ कहे । साधु को रूकना पड़े ऐसा हो तो दूसरे उपाश्रय में रूक जाए । साध्वी को अच्छा हो तब विहार करे । शायद साध्वी अकेली हो, बीमार हो और दूसरे उपाश्रय में रहकर बरदास्त हो सके ऐसा न हो तो उसी जगह में बीच में परदा रखे फिर शुश्रूषा करे । अच्छा होने पर यदि वो साध्वी निष्कारण अकेली हुई हो तो ठपका देकर गच्छ में शामील करवाए । किसी कारण से अकेली हुई हो तो यतना पूर्वक पहुँचाए

सूत्र – ११९-१३६

गाँव में जिनमंदिर में दर्शन कर के, बाहर आकर श्रावक को पूछे कि, 'गाँव में साधु है कि नहीं ?' श्रावक कहे कि, 'यहाँ साधु नहीं है लेकिन पास ही के गाँव में है । और वो बीमार है ।' तो साधु उस गाँव में जाए ।

सांभोगिक, अन्य सांभोगिक और ग्लान की सेवा करे उसके अनुसार पासत्था, ओसन्न, कुशील, संसक्त, नित्यवासी, ग्लान की भी सेवा करे, लेकिन उनकी सेवा प्रासुक आहार पानी औषध आदि से करे । किसी ऐसे गाँव में चले जाए कि जहाँ ग्लान के उचित चीज मिल सके । अगले गाँव में गया, वहाँ ग्लान साधु के समाचार मिले तो उस गाँव में जाकर आचार्य आदि हो तो उन्हें बताए, आचार्य कहे कि, 'ग्लान को दो' तो ग्लान को दे, लेकिन ऐसा कहे कि – 'ग्लान के योग्य दूसरा काफी है, इसलिए तुम ही उपयोग करो', तो खुद उपयोग करे । पता चला कि, 'आचार्य शठ है ।' तो वहाँ ठहरे नहीं । वेशधारी कोई ग्लान हो तो, वो अच्छा हो इसलिए कहे कि–'धर्म में उद्यम करो, जिससे संयम में दोष न लगे, उस प्रकार से समझाए । इस प्रकार से ग्लान आदि की सेवा करते हुए आगे विहार करे । इस प्रकार सभी जगह सेवा आदि करते हुए विहार करे तो आचार्य की आज्ञा का लोप नहीं होता । क्योंकि आचार्यने जिस काम के लिए भेजा है उस जगह पर अगले दिन पहुँचे । श्री तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा है कि – 'ग्लान की सेवा करनी चाहिए ।' इसलिए बीच में ठहर जाए, उसमें आचार्य की आज्ञा का लोप नहीं कहलाता लेकिन आज्ञापालन कहलाता है । क्योंकि तीर्थंकर की आज्ञा आचार्य की आज्ञा से ज्यादा मान्य है ।

यहाँ दृष्टांत है

एक राजा नीकला । सिपाई को कहा कि, अमुक गाँव में मुकाम करेंगे । वहाँ एक आवास करवाओ । सिपाई गया और कहा कि – राजा के लिए एक आवास तैयार करवाओ । यह बात सुनकर मुखीने भी गाँववालों को कहा कि, मेरे लिए भी एक आवास बनवाओ । गाँव के लोगों ने सोचा कि, 'राजा एक दिन रहकर चले जाएंगे, मुखी हंमेशा यहाँ रहेंगे, इसलिए राजा के लिए सामान्य मकान और मुखी के लिए सुन्दर महल जैसा मकान बनवाए । राजा के लिए घास के मंड़प जैसा मकान बनवाया, जब मुखी के लिए खूबसूरत मकान राजा के देखने में आने से पूछा कि, ''यह मकान किसका है ?'' लोगोंने कहा कि, मुखीया का । सुनते ही राजा गुस्सा हो गया और मुखीया को नीकाल देने के बाद गाँव लोगों को सज़ा की । यहाँ मुखीया की जगह आचार्य है, राजा की जगह तीर्थंकर भगवंत । गाँव लोगों की जगह साधु । श्री तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा का लोप करने से आचार्य और साधु को संसार समान सज़ा होती है । दूसरे गाँव के लोगों ने सोचा कि – 'राजा के लिए सबसे सुन्दर महल जैसा बनाए, क्योंकि राजा के चले जाने के बाद मुखीया के काम में आएगा ।' राजा आया, वो मकान देखकर खुश-खुश हो गया और गाँव के लोगों का कर माफ किया और मुखीया की पदवी बढ़ाकर, दूसरे गाँव का भी स्वामी बनाया । इस प्रकार जो श्री तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करता है वो सागर पार कर लेता है । तीर्थंकर की आज्ञा में आचार्य की आज्ञा आ जाती है ।

सूत्र – १३७-१५४

श्रावकद्वार–ग्लान के लिए रास्ते में ठहरे, लेकिन भिक्षा के लिए विहार में विलम्ब न करना । उसके द्वार– गोकुल, गाँव, संखड़ी, संज्ञी, दान, भद्रक, महानिनाद । इन सबके कारण से जाने में विलम्ब हो । **गोकुल**–रास्ते में जाते समय गोकुल आए तब दूध आदि का इस्तमाल करके तुरन्त चलना पड़े तो रास्ते में ठल्ला आदि बने इसलिए संयम विराधना हो और शंका रोक ले तो मरण हो । इसलिए गोकुल में भिक्षा के लिए न जाना । **गाँव**–गाँव समृद्ध हो उसमें भिक्षा का समय न हुआ हो, इसलिए दूध आदि ग्रहण करे तो ठल्ला आदि के दोष हो ।

संखडी–समय न हो तो इन्तजार न करे उसमें स्त्री आदि के संघट्टादि दोष हो, समय होने पर आहार लाकर काफी उपयोग करे तो बीमारी आए । ठल्ला आदि हो उसमें आत्म विराधना–संयम विराधना हो । विहार में देर लगे। **संज्ञी**–(श्रावक) जबरदस्ती करे, गोचरी का समय न हुआ हो तो दूध आदि ग्रहण करे, उसमें ठल्ला आदि के दोष हो । **दान श्रावक**–घी आदि ज्यादा वहोराए, यदि उपयोग करे तो बीमारी, ठल्ला आदि के दोष हो । परठवे तो संयमविराधना । **भद्रक**-कोई स्वभाव से साधु को और भाववाला भद्रक हो, उसके पास जाने में देर करे, फिर वो लड्डू आदि वहोराए, वो खाए तो बीमारी ठल्ला आदि दोष हो । परठवे तो संयम विराधना । **महानिनाद**–(वसतिवाले, प्रसिद्ध घर) वहाँ जाने के लिए गोचरी का समय न हुआ हो तो इन्तजार करे । समय होने पर ऐसे घर में जाए, वहाँ से स्निग्ध आहार मिले तो खाए, उसमें ऊपर के अनुसार दोष हो । उसी प्रकार मार्ग में अनुकूल गोकुल, गाँव, जमण, उत्सव, रिश्तेदार आदि श्रावक घरों में भिक्षा के लिए घूमने से होनेवाला गमन-विघात आदि दोष बताए, वहाँ से स्निग्ध अच्छा अच्छा लाकर ज्यादा आहार लिया हो तो नींद आए । सो जाए तो सूत्र और अर्थ का पाठ न हो सके, इससे सूत्र और अर्थ, विस्मरण हो जाए, सोए नहीं तो अजीर्ण हो, बीमारी आए ।

इन सभी दोष से बचने के लिए रास्ते में आनेवाले गोकुल आदि में से छांछ, चावल ग्रहण करे । तो ऊपर के ग्लानत्वादि और आज्ञा भंग आदि दोष का त्याग माना जाता है । खुद, जिस गाँव के पास आया, उस गाँव में भिक्षा का समय न हुआ हो और दूसरा गाँव दूर हो या पास ही में रहा गाँव नया बसाया हो, खाली हो गया हो, सिपाही आए हो, प्रत्यनीक हो – तो इस कारण से गाँव के बाहर भी इन्तजार करे । भिक्षा का समय होने पर ऊपर बताए गाँव गोकुल-संखडी श्रावक आदि के वहाँ जाकर दूध आदि लाकर रखकर आगे विहार करे । तपे हुए लोहे पर जैसे पानी आदि का क्षय हो जाता है उसी प्रकार साधु का रूक्ष स्वभाव होने से उनकी तासीर में घी-दूध आदि क्षीण हो जाते हैं । इसके अनुसार कारण से दोष गुण समान होते हैं । अब गाँव में जाने के बाद पता चलता है कि,

'अभी तक भिक्षा का समय नहीं हुआ ।' तो वहाँ किसका इन्तजार करे और उद्गम आदि दोष की जाँच करे, गृहस्थ हो तो आगे जाए और देवकुल आदि – शून्यगृह आदि में जहाँ गृहस्थ आदि न हो, वहाँ जाकर गोचरी करे । शून्यगृह में प्रवेश करने से पहले लकड़ी थपथपाए, खाँसी खाए, जिससे शायद कोई भीतरी हो तो बाहर नीकल जाए, फिर भीतर जाकर इरियावही करके, गोचरी करे ।

सूत्र – १५५-१६१

गोचरी करते हुए शायद भीतर से किसी गृहस्थ आ जाए तो बिना ड़रे यह तुम्हारा पिंड़ स्वाहा, यह यम पिंड़ यह वरुण पिंड़ आदि बोलने लगे पिशाच ने ग्रहण किया हो ऐसा मुँह बनाए । इसलिए वो आदमी भयभीत होकर वहाँ से नीकल जाए । शायद कोई पुरुष बाहर से, छिद्र में से या खिड़की में से या ऊपर से देख ले और वो आदमी चिल्लाकर दूसरे लोगों को बोले कि – यहाँ आओ, यहाँ आओ, यह साधु पात्र में भोजन करते हैं । ऐसा हो तो साधु को क्या करना चाहिए ? गृहस्थ दूर हो तो थोड़ा खाए और ज्यादा वहाँ रहे खड्डे में ड़ाल दे – छिपा दे या धूल से ढँक दे और वो लोग आने से पहले पात्र साफ कर दे और स्वाध्याय करने में लग जाए । उन लोगों के पास आकर पूछे कि – तुमने भिक्षा कहाँ की यदि वो लोगने गाँव में गोचरी करते देख लिया हो तो कहे कि, 'श्रावक आदि के घर खाकर यहाँ आए हो, उन लोगों ने भिक्षा के लिए घूमते न देखा हो तो पूछे कि, क्या भिक्षा का समय हुआ है ? यदि वो पात्र देखने के लिए जबरदस्ती करे तो पात्र दिखाए । पात्र साफ दिखने से, वो आए हुए लोग कहनेवाले से नफरत करे । इससे शासन का ऊड्डाह नहीं होता । गाँव की नजदीक में जगह न मिले और शायद दूर जाना पड़े, तो वहाँ जाने के बाद इरियावही करके थोड़ी देर स्वाध्याय करके शान्त होने के बाद भिक्षा खाए । किसी भद्रक वैद्य साधु को भिक्षा ले जाते हुए देखे और उसे लगे कि इस साधु को धातु का वैषम्य हुआ है, यदि इस आहार को तुरन्त खाएंगे तो यकीनन मौत होगी । इसलिए वैद्य सोचता है कि, मैं इस साधु के पीछे जाऊं, यदि तुरन्त आहार करे तो रोक लूँ । लेकिन जब वैद्य के देखने में आता है कि – यह साधु जल्दी खाने नहीं लगते लेकिन क्रिया करते हैं । क्रिया करने में शरीर की धातु सम हो जाती है । यह सब देखकर वैद्य साधु के पास आकर पूछता है कि–क्या तुमने वैदिकशास्त्र पढ़ा है ? तुमने आकर भिक्षा नहीं खाई ? साधु ने कहा कि – हमारे सर्वज्ञ भगवान का यह उपदेश है कि, 'स्वाध्याय करने के बाद खाना ।' फिर साधु वैद्य को धर्मोपदेश दे । इससे वो वैद्य शायद दीक्षा ग्रहण करे या तो श्रावक हो । ऐसे विधि सँभालने में कईं फायदे हैं । तीन गाऊ जाने के बावजूद गोचरी करने का स्थान न मिले तो और नजदीकी गाँव में आहार मिले ऐसा हो और समय लगता हो तो साथ में लाया गया आहार परठवे, लेकिन यदि आहार लाकर खाने में सूर्य अस्त हो जाए तो वहीं धर्मास्तिकायादि की कल्पना करके यतना पूर्वक आहार खा ले ।

सूत्र – १६२-१७१

साधु – दो प्रकार के- देखे हुए और न देखे हुए, उसमें भी परिचित गुण से पहचाने हुए और गुण न पहचाने हुए । पहचाने में सुने हुए गुणवाले और न सुने हुए गुणवाले । उसमें प्रशस्त गुणवाले और अप्रशस्त गुणवाले । उसमें भी सांभोगिक और अन्य सांभोगिक । साधु को देखा हो तो फिर वो अज्ञात गुणवाले कैसे हो सके ? समवसरण-महोत्सव आदि जगह में देखा हो, लेकिन पहचान न होने से गुण पहचान में न आए हों, कुछ देखे हुए न हों, लेकिन गुण सुने हुए हों । जो साधु शुद्ध आचारवाले हो, उसके साथ निवास करना । (अशुद्ध) साधु की परीक्षा दो प्रकार से – (१) बाह्य (२) अभ्यंतर । दोनों में द्रव्य से और भाव से, बाह्य-द्रव्य से परीक्षा जंघा आदि साबुन आदि से साफ करे । उपानह रखे, रंगबीरंगी लकड़ी रखे, साध्वी की प्रकार सिर पर कपड़ा ओढ़ ले, एक दूसरे साधु के साथ हाथ पकड़कर चले, आड़ा-टेढ़ा देखते-देखते चले, दिशा आदि के उपयोग बिना स्थंड़िल पर बैठे । (पवन के सामने, गाँव के सामने, सूर्य के सामने न बैठे लेकिन पीठ करके बैठे ।) काफी पानी से प्रक्षालन करे आदि । बाह्य-भाव से परीक्षा–स्त्री-भोजन, देश और चोरकथा करते जा रहे हो, रास्ते में गीत, मैथुन सम्बन्धी बातें या फेर फुदरड़ी करते चले । मानव तिर्यंच आ रहे हों तो वहाँ मात्रु स्थंड़िल के लिए जाए, ऊंगली से कुछ नकल करे

। शायद बाह्य प्रेक्षणा में अशुद्ध हो तो भी वसति में जाना और गुरु की परीक्षा लेना क्योंकि शायद वो साधु गुरु की मनाई होने के बावजूद ऐसा आचरण कर रहे हो । बाह्य परीक्षा में शुद्ध हो, फिर भी अभ्यंतर परीक्षा लेना । अभ्यंतर द्रव्य, परीक्षा, भिक्षा आदि के लिए बाहर गए हो, वहाँ किसी गृहस्थ आदि निमित्त आदि पूछे तो वो न बताए, अशुद्ध आहार आदि का निषेध कर रहा हो और शुद्ध आहार ग्रहण कर रहा हो, वेश्या-दासी आदि के स्थान के पास रहता न हो, तो ऐसे साधु को शुद्ध मानना चाहिए । उपाश्रय के भीतर शेषकाल में पीठफलक आदि का उपयोग न कर रहे हो, मात्रु आदि गृहस्थ से अलग हो, श्लेष्म आदि भस्मवाली कूंड़ में ड़ाले तो उसे शुद्ध मानना । अभ्यंतर भाव परीक्षा – कामोत्तेजक गीत गा रहे हो या कथा कर रहे हो, पासा कोड़ी आदि खेल रहे हो तो उसे अशुद्ध समझना । गुण से युक्त समनोज्ञ साधु के साथ रहना, ऐसे न हो तो अमनोज्ञ साधु के साथ रहना । उपाश्रय में प्रवेश करके उपकरण एक ओर रखकर वंदन आदि करके स्थापना आदि कुल पूछकर फिर गोचरी के लिए जाए।

सूत्र – १७२-१७८

वसतिद्वार – संविज्ञ समोज्ञ साधु के साथ वसति ढूँढ़ना, ऐसी न हो तो नित्यवासी, अमनोज्ञ पार्श्वस्थ आदि वहाँ रहे हो तो, उनके साथ न बँसते हुए, उन्हें बताकर अलग स्थान में यानि स्त्री रहित श्रावक के घर में रहना । ऐसा न हो तो स्त्री रहित भद्रक के घर में रहना । ऐसा न हो तो स्त्री रहित भद्रक के घर में अलग कमरा या ड़ेली में रहना, ऐसा न हो तो स्त्री सहित भद्रक के घर में बीच में पर्दा आदि करके रहना । ऐसा भी न हो तो बील आदि रहित, मजबूत और दरवज्जेवाले शून्य गृह में रहना और अपनी देखभाल रखने के लिए नित्यवासी आदि को बताए। शून्यगृह भी न हो तो उपर्युक्त कालचारी नित्यवासी पार्श्वस्थादि रहे हो वहाँ उन्होंने इस्तमाल न किया हो ऐसे प्रदेश में रहे, उपधि आदि अपने पास रखकर प्रतिक्रमण आदि क्रिया करके कायोत्सर्ग आदि करे । यदि जगने की शक्ति न हो तो यतनापूर्वक सोए, ऐसी जगह भी न हो तो यथाछंद आदि की बसति का भी इस्तमाल करे । उसकी विशेष विधि यह है – वो झूठी प्ररूपणा कर रहा हो, उसका व्याघात करे, यदि व्याघात करने में समर्थ न हो तो ध्यान करे, ध्यान न कर सके तो ऊंचाई से पढ़ना शुरू कर दे, पढ़ न सके तो अपने कान में ऊंगली ड़ालना, इसलिए सामनेवाले को लगे कि यह नहीं सुन सकेगा इसलिए उसकी धर्मकथा बंध करे, नासकोरा आदि की ज्यादा आवाझ करके सोने का दिखावा करे, जिससे वो त्रस्त हो जाए, ऐसा न हो तो, अपने उपकरण पास रखकर यतनापूर्वक सो जाए ।

सूत्र – १७९-१८४

स्थानस्थित (कारण से) विहार करते हुए वर्षाकाल आ जाए, जिस रास्ते पर जाना हो उस गाँव में अशिव आदि का उपद्रव हो, अकाल को, नदी में बाढ़ आई हो । दूसरे रास्ते से जाने के लिए समर्थ हो तो उस रास्ते से घूमकर जाए । वरना जब तक उपद्रव आदि की शान्ति न हो तब तक उस बीच के गाँव में रूके । रास्ते में पता चले कि जिस काम के लिए जिस आचार्य के पास जाने के लिए नीकला था, वो आचार्य उस गाँव में से विहार कर चूके हैं । तो जब तक वो आचार्य किस गाँव में गए हैं, वो मालूम न हो तब तक उस गाँव में ठहरे और पता चले तब उस ओर विहार करे । वो आचार्य महाराज का कालधर्म होने का सुनाई दे, तो जब तक पूरे समाचार न मिले तब तक बीच के गाँव में ठहर जाए । खुद ही बीमार हो जाए तो ठहर जाए । गाँव में ठहरने से पहले गाँव में वैद्य को और गाँव के स्वामी (मुखीया) को बात करके रूके । क्योंकि वैद्य को बात की हो तो बीमारी में दवाई अच्छी प्रकार से दे और मुखीया को बात की हो तो रक्षा करे । गाँव में बड़ा पुरुष हो उसके स्थान में रहे या योग्य वसति में ठहरे । वहाँ रहते दंड़क आदि की अपने आचार्य की प्रकार स्थापना करे, इस कारण कारणिक हो तो प्रमाद छोड़कर विचरता है

सूत्र – १८५-१९०

स्थानस्थित (बिना कारण) – गच्छ में सारणा, वारणा, चोयणा, पड़िचोयणा होते हैं, उससे दुःखी होकर अकेला जाए, तो वो अपनी आत्मा को नुकसान करता है, जैसे सागर में छोटी–बड़ी कईं मछलियाँ होती हैं वो एक

दूसरे को टकरावे हो, तो कोई मछली इस दुःख से दर्द पाकर सुखी होने के लिए अगाध जल में से गहरे जल में जाए तो वो मछली कितनी खुश रह सकती है ? यानि मछवारे की जाल या बगले की चोंच आदि में फँसकर वो मछली जल्द नष्ट होती है ऐसे साधु यदि गच्छ में से ऊंबकर नीकल जाए तो उल्टा साधुता से भ्रष्ट होने में उसे देर नहीं लगती, इसीलिए गच्छ में प्रतिकूलता होने के बावजूद भी गच्छ में ही रहना चाहिए । जो साधु चक्र, स्तूप, प्रतिमा, कल्याणकादिभूमि, संखड़ी आदि के लिए विहार करे । खुद जहाँ रहते हो वो जगह अच्छी न हो या खुद को अच्छा न लगता हो । यानि तो दूसरे अच्छे स्थान हो वहाँ विहार करे । अच्छी अच्छी उपधि, वस्त्र, पात्र और गोचरी अच्छी न मिलती हो तो दूसरी जगह विहार करे । इसे निष्कारण विहार कहते हैं, लेकिन यदि गीतार्थ साधु सूत्र अर्थ उभय से ज्यादा सम्यग् दर्शन आदि स्थिर करने के लिए विहार करे तो उसे कारणिक विहार कहते हैं ।

सूत्र – १९१-१९९

शास्त्रकारने एक गीतार्थ और दूसरा गीतार्थ निश्रित यानि खुद गीतार्थ न हो लेकिन गीतार्थ की निश्रा में रहा हो, ऐसे दो विहार की अनुज्ञा – अनुमति दी है । अगीतार्थ अकेला विचरण करे या जिसमें सभी साधु अगीतार्थ विचरण कर रहे हों तो वो संयम विराधना, आत्म विराधना और ज्ञानदर्शन चारित्र की विराधना करनेवाला होता है और श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा का लोप करनेवाला होता है और उससे संसार बढ़ाता है । इस प्रकार विहार करनेवाले – चार प्रकार के हैं । जयमाना, विहरमाना, अवधानमाना, आहिंड़का,

जयमाना, तीन प्रकार से–ज्ञान में बेचैन दर्शन में बेचैन, चारित्र में बेचैन । **विहरमाना**–दो प्रकार से । गच्छमता, गच्छनिर्गता, प्रत्येक बुद्ध-जाति स्मरण या किसी दूसरे निमित्त से बोध पाकर साधु बने हुए – जिन कल्प अपनाए हुए प्रतिमाधारी – साधु की बारह प्रतिमा का वहन करनेवाले । **अवधावमान**–दो प्रकार से, लिंग से विहार से । लिंग से – साधु का वेश रखके भी गृहस्थ बने हुए । **विहार** – पार्श्वस्थ कुशील आदि होनेवाले । **आहिंड़का** – दो प्रकार से उपदेश-आहिंड़का, अनुपदेश आहिंड़का । उपदेश आहिंड़का आज्ञा के अनुसार विहार करनेवाले । अनुपदेश आहिंड़का–बिना कारण विचरण करनेवाले । स्तूप आदि देखने के लिए विहार करनेवाले ।

सूत्र – २००-२१९

मासकल्प या बारिस की मौसम पूर्ण होने पर, दूसरे क्षेत्र में जाना हो तब क्षेत्र प्रत्युप्रेक्षक आ जाने के बाद आचार्य सभी साधुओं को इकट्ठा करे और पूछे कि, 'किसे कौन-सा क्षेत्र ठीक लगा ?' सबका मत लेकर सूत्र अर्थ की हानि न हो उस प्रकार से विहार करे । चारों दिशा शुद्ध हो (अनुकूल हो) तो चार दिशा में, तीन दिशा शुद्ध हो तो तीन दिशा में, दो दिशा शुद्ध हो तो दो दिशा में, सात-सात, पाँच-पाँच या तीन-तीन साधु को विहार करवाए । जिस क्षेत्र में जाना हो वो क्षेत्र कैसा है वो पहले से पता कर लेना चाहिए । फिर विहार करना चाहिए । यदि जाँच किए बिना उस क्षेत्र में जाए तो शायद उतरने के लिए वसति न मिले । भिक्षा दुर्लभ हो । बाल, ग्लान आदि के उचित भिक्षा न मिले । माँस, रुधिर आदि से असज्झाय रहती हो । इसलिए स्वाध्याय न हो सके । इसलिए पहले से जाँच करने के बाद यतना से विहार करना चाहिए ।

क्षेत्र की जाँच करने के लिए सबकी सलाह लेना और गण को पूछकर जिसे भेजना हो उसे भेज दे । खास अभिग्रहवाले साधु हो तो उन्हें भेजे । वो न हो तो दूसरे समर्थ हो तो उसे भेजे । लेकिन बाल, वृद्ध, अगीतार्थ, योगी, वैयावच्च करनेवाले तपस्वी आदि को न भेजे, क्योंकि – उन्हें भेजने में दोष है ।

बालसाधु को – भेजे तो म्लेच्छ आदि साधु को उठा ले जाए । या तो खेलकूद का मिजाज होने से रास्ते में खेलने लगे । कर्तव्य अकर्तव्य न समझ सके । या जिस क्षेत्र में जाए, वहाँ बालसाधु होने से लोग अनुकंपा से ज्यादा दे । इसलिए बालसाधु को न भेजे । वृद्ध साधु को भेजे तो बुढ़ापे के कारण से शरीर काँप रहा हो तो लम्बे अरसे के बाद उचित स्थान पर पहुँचे । और यदि इन्द्रिय शिथिल हो गई हो तो रास्ता अच्छी प्रकार से न देख सके, स्थंड़िल भूमि की भी अच्छी प्रकार से जाँच न कर सके । वृद्ध हो इसलिए लोग अनुकंपा से ज्यादा दे इसलिए वृद्ध साधु को भी न भेजे । **अगीतार्थ** को भेजे तो वो मासकल्प, वर्षाकल्प आदि विधि का पता न हो तो, वसति की

परीक्षा न कर सके । शय्यातर पूछे कि, ''तुम कब आओगे ?'' अगीतार्थ होने से बोले कि, 'कुछ दिन में आ जाएंगे, इस प्रकार अविधि से बोलने का दोष लगे । इसलिए अगीतार्थ साधु को न भेजे । **योगी को** – भेजे तो वो जल्द अपना काम नीपटाने की ईच्छावाला हो, तो जल्द जाए, इसलिए मार्ग की अच्छी प्रकार से प्रत्युप्रेक्षा न हो सके और फिर पाठ स्वाध्याय का अर्थी हो, इसलिए भिक्षा के लिए ज्यादा न घूमे, दूध दहीं आदि मिलता हो तो भी ग्रहण न करे, इसलिए योगी – सूत्रोद्देश आदि के योग करनेवाले साधु को न भेजे । **वृषभ को** – भेजे तो वो वृषभ साधु गुस्से से स्थापना कुल न कहे या कहे लेकिन दूसरे साधु को वहाँ जाने न दे या स्थापना कुल उसके ही पहचानवाले हो, इसलिए दूसरे साधु को प्रायोग्य आहार आदि न मिले, इसलिए ग्लानादि साधु सीदाय, इसलिए वृषभ साधु को न भेजे । **तपस्वी को** – भेजे तो तपस्वी दुःखी हो जाए या फिर तपसी समझकर लोग आहारादि ज्यादा दे, इसलिए तपस्वी साधु को न भेजे । दूसरा किसी समर्थ साधु जाए ऐसा न हो तो अपवाद से ऊपर के अनुसार साधु को यतनापूर्वक भेजे ।

बाल साधु को भेजे तो उसके साथ गणावच्छेदक को भेजे, वो न हो तो दूसरे गीतार्थ साधु को भेजे, वो न हो तो दूसरे अगीतार्थ साधु को सामाचारी कहकर भेजे । योगी को भेजे तो अनागाढ़ योगी हो तो योग में से नीकालकर भेजे । वो न हो तो तपस्वी को पारणा करवाकर भेजे । वो न हो तो वैयावच्च करनेवाले को भेजे । वो न हो तो वृद्ध और जवान या बाल और जवान को भेजे ।

सूत्र – २२०-२४३

मार्ग में जाते हुए चार प्रकार की प्रत्युप्रेक्षणा करते हुए जाए । रास्ते में ठल्ला मात्रा की भूमि, पानी के स्थान, भिक्षा के स्थान, वसति – रहने के स्थान देखे और फिर भयवाले स्थान हो वो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ऐसे चार प्रकार से प्रत्युप्रेक्षाणा करे । **द्रव्य से** – रास्ते में काँटे, चोर, शिकारी जानवर, प्रत्यनीक कुत्ते आदि । **क्षेत्र से** ऊंची, नीचे, खड्डे–पर्वत पानीवाले स्थान आदि । **काल से** – जाने में जहाँ रात को आपत्ति हो या दिन में आपत्ति हो तो उसे पहचान लो या दिन में रास्ता अच्छा है या बूरा, रात को रास्ता अच्छा है या बूरा उसकी जाँच करे, **भाव** – उस क्षेत्र में निह्नव, चरक, परिव्राजक आदि बार-बार आते हों इससे लोगों की दान की रुचि न रही हो, उसकी जाँच करे । जब तक इच्छित स्थान पर न पहुँचे तब तक सूत्र पोरिसी, अर्थ पोरिसी न करे । वो क्षेत्र के नजदीक आ जाए तब पास के गाँव में या गाँव के बाहर गोचरी करके, शाम के समय गाँव में प्रवेश करे और वसति ढूँढ़े, वसति मिल जाने पर कालग्रहण लेकर दूसरे किसी न्यून पोरिसी तक स्वाध्याय करे । फिर संघाटक होकर गोचरी पर जाए । क्षेत्र के तीन हिस्से करे । एक हिस्से में सुबह में गोचरी पर जाए, दूसरे हिस्से में दोपहर को गोचरी के लिए जाए और तीसरे में शाम को गोचरी के लिए जाए । सभी जगह से थोड़ा थोड़ा ग्रहण करे और दूध, दहीं, घी आदि माँगे क्योंकि माँगने से लोग दानशील है या कैसे हैं उसका पता चले । तीन बार गोचरी में जाकर परीक्षा ले । इस प्रकार पास में रहे आसपास के गाँव में भी परीक्षा ले । सभी चीजें अच्छी प्रकार से मिल रही हो तो वो क्षेत्र उत्तम कहलाता है । कोई साधु शायद काल करे तो उसे परठ सके उसके लिए महास्थंड़िलभूमि भी देख रखे । वसति किस जगह पर करनी और कहाँ न करे उसके लिए जो वसति हो उसमें दाँई ओर पूर्वाभिमुख वृषभ बैठा हो ऐसी कल्पना करे । उसके हरएक अंग के फायदे इस प्रकार है । शींग के स्थान पर वसति करे तो कलह हो । पाँव या गुदा के स्थान पर वसति करे तो पेट की बीमारी हो । पूँछ की जगह वसति करे तो नीकलना पड़े । मुख के स्थान पर वसति करे तो अच्छी गोचरी मिले । शींग के या खंभे के बीच में वसति करे तो पूजा सत्कार हो । स्कंध और पीठ के स्थान पर वसति करे तो बोझ लगे, पेट के स्थान पर वसति करे तो हंमेशा तृप्त रहे ।

सूत्र – २४४-२४६

शय्यातर के पास से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से प्रायोग्य की अनुज्ञा पाए । **द्रव्य से** – घास, ड़गल, भस्म आदि की अनुज्ञा । **क्षेत्र से** – क्षेत्र की मर्यादा आदि । **काल से** – रात को या दिन में ठल्ला मात्रु परठवने के लिए अनुज्ञा । **भाव से** – ग्लान आदि के लिए पवन रहित आदि प्रवेश की अनुज्ञा । शय्यातर कहते हैं कि मैं तुम्हें इतना

स्थान देता हूँ, ज्यादा नहीं । तब साधुको कहना चाहिए कि जो भोजन दे वो पानी आदि भी देता है । इस प्रकार हमको वसति देनेवाले तुमने स्थंड़िल–मात्रादि भूमि भी दी है । शय्यातर पूछते हैं , तुम कितना समय यहाँ रहोगे ? साधु को कहना चाहिए कि, जब तक अनुकूल होगा तब तक रहेंगे । शय्यातर पूछते हैं कि, 'तुम कितने साधु यहाँ रहोगे ?' साधु ने कहा कि 'सागर की उपमा से ।' सागर में किसी दिन ज्यादा पानी हो, किसी दिन मर्यादित पानी होता है, ऐसे गच्छ में किसी समय ज्यादा साधु होते हैं तो किसी दिन परिमित साधु होते हैं । शय्यातर ने पूछा कि, 'तुम कब आओगे?' साधु ने कहा कि, हमारे दूसरे साधु दूसरे स्थान पर क्षेत्र देखने के लिए गए हैं, इसलिए सोचकर यदि यह क्षेत्र उचित लगेगा तो आएंगे, यदि शय्यातर ऐसा कहे कि, तुम्हें इतने ही क्षेत्र में और इतनी ही गिनती में रहना पड़ेगा । तो उस क्षेत्र में साधु को मासकल्प आदि करना न कल्पे । यदि दूसरी जगह वसति न मिले तो वहीं निवास करे । जिस वसति में खुद रहे हो वो वसति यदि परिमित हो और वहाँ दूसरे साधु आए तो उन्हें वंदन आदि करना, खड़े होना, सन्मान करना, भिक्षा लाना, देना, आदि विधि सँभालना, फिर उस साधु को कहना कि, 'हमको यह वसति परिमित मिली है इसलिए दूसरे ज्यादा नहीं रह सकते, इसलिए दूसरी वसति की जाँच करनी चाहिए ।

सूत्र – २४७-२८०

क्षेत्र की जाँच करके वापस आते हुए दूसरे रास्ते पर होकर आना, क्योंकि शायद जो क्षेत्र देखा था, उससे अच्छा क्षेत्र हो तो पता चले । वापस आने से भी सूत्रपोरिसी अर्थपोरिसी न करे । क्योंकि जितने देर से आए उतना समय आचार्य को ठहरना पड़े, मासकल्प से ज्यादा वास हो उतना नित्यवास माना जाता है । आचार्य भगवंत के पास आकर, इरियावही करके, अतिचार आदि की आलोचना करके आचार्य को क्षेत्र के गुण आदि बताए । आचार्य रात को सभी साधुओं को इकट्ठा करके क्षेत्र की बातें करे । सबका अभिप्राय लेकर खुद को योग्य लगे उस क्षेत्र की ओर विहार करे, आचार्य का मत प्रमाण गिना जाता है, उस क्षेत्र में से विहार करने से विधिवत् शय्यातर को बताए। अविधि से कहने में कईं दोष रहे हैं । शय्यातर को बताए बिना विहार कर ले तो शय्यातर को होता है कि, यह भिक्षु को लोकधर्म मालूम नहीं है । जो प्रत्यक्ष ऐसे लोकधर्म को नहीं जानते उन्हें अदृष्ट का कैसे पता चल सके ? इसलिए शायद जैन धर्म को छोड़ दे । दूसरी बार किसी साधु को वसति न दे । किसी श्रावक आदि आचार्य को मिलने आए हो या दीक्षा लेने के लिए आए हो तो शय्यातर को पूछे कि, 'आचार्य कहाँ है ?' रोषायमान शय्यातर कहे कि, हमे क्या पता ? ऐसा उत्तर सुनकर श्रावक आदि को होता है कि 'लोकव्यवहार का भी ज्ञान नहीं है तो फिर परलोक का क्या ज्ञान होगा ? इसलिए दर्शन का त्याग करे, इत्यादि दोष न हो इसके लिए विधिवत् शय्यातर को पूछकर विहार करे । पास के गाँव में जाना हो तो सूत्र पोरिसी, अर्थ पोरिसी करके विहार करे । काफी दूर जाना हो तो पात्र पड़िलेहणा किए बिना नीकले । बाल, वृद्ध आदि खुद उठा सके उतनी उपधि उठाए, बाकी उपधि जवान आदि समर्थ हो तो उठाए । किसी निद्रालु जैसे ही जल्द न नीकले तो उन्हें मिलने के लिए जाते हुए संकेत करके जाए, जल्द जाते समय आवाझ न करे, आवाझ करे तो लोग सो रहे हों वो जाग उठे, इसलिए अधिकरण आदि दोष लगे, सब साथ में नीकले, जिससे किसी साधु को रास्ता पूछने के लिए आवाझ न करना पड़े, अच्छी तिथि, मुहूर्त्त, अच्छा सगुन देखकर विहार करे ।

मलीन देहवाला फटे हुए कपड़ेवाला शरीर पर तेल लगाया हुआ, कुबड़ा, वामन-कुत्ता, आँठ-नौ महिने के गर्भवाली स्त्री, ज्यादा उम्रवाली कन्या, लकड़ी का भारा, बाबा, वैरागी, लम्बी दाढ़ी मूँछवाला, लुहार, पांडुरोगवाला, बौद्धभिक्षु, दिगम्बर आदि अपसगुन है जब कि नंदी, वाजिंत्र, पानी से भरा घड़ा, शंख, पड़ह का शब्द, झारी, छत्र, चामर, झंड़ा, पताका, श्रमण, साधु, जितेन्द्रिय, पुष्प इत्यादि शुभ सगुन हैं ।

सूत्र – २८१-२९०

संकेत – प्रदोष, (संध्या) के समय आचार्य सभी साधुओं को इकट्ठा करके कहे कि, कुछ समय पर नीकलेंगे । कुछ-कुछ जगह पर विश्राम करेंगे, कुछ जगह पर ठहरेंगे, कुछ गाँव में भिक्षा के लिए जाएंगे । आदि

किसी निद्रालु/शठ प्रायः के साथ आने के लिए तैयार न हो तो उसके लिए भी कुछ जगह पर इकट्ठे होने का संकेत दे । वो अकेला सो जाए या गोकुल आदि में घूमता हो तो प्रमाद दोष से उसकी उपधि हर जाए । क्षेत्र प्रत्युप्रेक्षक कुछ गच्छ के आगे, कुछ मध्य में और कुछ पीछे चले । रास्ते में स्थंड़िल, मात्रा आदि की जगह बताए । क्योंकि किसी को अति शंका हुई हो तो टाल सके । रास्ते में गाँव आए वहाँ भिक्षा मिल सके ऐसा हो और जिस गाँव में ठहरना है, वो गाँव छोटा हो, तो तरुण साधु को गाँव में भिक्षा लेने के लिए भेजे और उनकी उपधि आदि दूसरे साधु ले ले । किसी साधु असहिष्णु हो तो गोचरी के लिए वहाँ रखकर जाए और साथ में मार्ग के परिचित साधु को रखे । जिससे जिस गाँव में जाना है वहाँ सुख से आ सके । जिस गाँव में ठहरना है उस गाँव में किसी कारण से बदलाव हो गया हो यानि उस गाँव में रहा जाए ऐसा न हो तो, पीछे रहे साधु इकट्ठे हो सके उसके लिए दो साधु को वहाँ रोक ले । यदि दो साधु न हो तो एक साधु को रोके या किसी लुहार आदि को कहे कि, हम उस गाँव में जा रहे हैं । पीछे हमारे साधु आते हैं, उनको कहना कि तुम्हारे साधु इस रास्ते पर गए हैं । वो गाँव यदि शून्य हो तो जिस रास्ते से जाना हो उस रास्ते पर लम्बी रेखा खींचनी चाहिए । जिससे पीछे आनेवाले साधु को रास्ते का पता चले । गाँव में प्रवेश करे उसमें यदि वसति का व्याघात हुआ हो, तो दूसरी वसति की जाँच करके उतरे । रास्ते में भिक्षा के लिए रोके हुए साधु भिक्षा लेकर आए तब पता चले, कि 'गच्छ तो आगे के गाँव में गए हैं ।' तो यदि वो गाँव दो जोजन से ज्यादा हो, तो एक साधु को गच्छ के पास भेजे, वो साधु गच्छ में रहे साधु में भूखे हो वो साधु भिक्षा लेकर ठहरे हैं वहाँ वापस आ जाए । फिर गोचरी करके उस गाँव में जाए । गाँव में रहे साधुने यदि गोचरी कर ली हो तो कहलाए कि, 'हमने खाया है', तुम वहाँ गोचरी करके आना ।

सूत्र – २९१-३१८

वसति ग्रहण – गाँव में प्रवेश करके उपाश्रय के पास आए, फिर वृषभ साधु वसति में प्रवेश करके काजो ले, परदा बाँधे तब तक दूसरे साधु उपाश्रय के बाहर खड़े रहें । काजा लिए जाने के बाद सभी साधु वसति में प्रवेश करे । यदि उस समय गोचरी का हो तो एक संघाटक काजा ले और दूसरे गोचरी के लिए जाए । पूर्वे तय की हुई वसति का किसी कारण से व्याघात हुआ हो, तो दूसरी वसति की जाँच करके, सभी साधु उस वसति में जाए । **प्रश्न** गाँव के बाहर गोचरी करके फिर वसति में प्रवेश करना । क्योंकि भूखे और प्यासे होने से ईर्यापथिकी ढूँढ़ न सके, इसलिए संयम विराधना होती है । पाँव में काँटा आदि लगा हो तो उपधि के बोझ से देख न सके, इससे आत्म विराधना हो, इसलिए बाहर विकाले आहार करके प्रवेश करना उचित नहीं है ? ... ना । बाहर खाने में आत्म-विराधना, संयम विराधना के दोष हैं । क्योंकि यदि बाहर गोचरी करे तो वहाँ गृहस्थ हो । उन्हें दूर जाने के लिए कहे और यदि वो दूर जाए उसमें संयम विराधना हो । उसमें शायद वो गृहस्थ वहाँ से हटे नहीं और उल्टा सामने बोले कि, तुम इस जगह के मालिक नहीं हो । शायद आपस में कलह होता है । साधु मंड़लीबद्ध गोचरी करते हैं, इसलिए गृहस्थ ताज्जुब से आए, इसलिए संक्षोभ हो । आहार गले में न उतरे । कलह हो । इसलिए गृहस्थ कोपायमान हो और फिर से वसति न दे । दूसरे गाँव में जाकर खाए तो उपधि और भिक्षा के बोझ से और क्षुधा के कारण से, ईर्यापथिकी देख न सके । इससे पाँव में काँटा लगे तो आत्म विराधना । आहारादि नीचे गिर जाए तो उसको छह काय की विराधना । यानि संयम विराधना । विकाले प्रवेश करे तो वसति न देखी हुई हो वो दोष लगे । गाँव में प्रवेश करते ही कुत्ता आदि काट ले, चोर हो तो मारे या उपधि उठा ले जाए । रखेवाल शायद पकड़े या मारे । बैल हो तो शायद शींग मारे । रास्ता भटक जाए । वेश्या आदि निंद्य के घर हो उसका पता न चले । वसति में काँटा आदि पड़े हों तो लग जाए । सर्प आदि के बील हो तो शायद साँप आदि ड़ंस ले । इससे आत्म विराधना हो । न देखी हुई प्रमार्जन न की हुई वसति में संथारो करने से चींटी आदि जीवजन्तु की विराधना हो, इससे संयम विराधना हो । न देखी हुई वसति में कालग्रहण लिए बिना स्वाध्याय करे तो दोष और यदि स्वाध्याय न करे तो सूत्र अर्थ की हानि हो । स्थंड़िल मात्रु न देखी हुई जगह पर परठवने से संयम विराधना और आत्मविराधना हो, यदि स्थंड़िल आदि रोके तो – स्थंड़िल रोकने से मौत हो, मात्रु रोकने से आँख का तेज कम हो, ड़कार रोकने से

कोढ़ की बीमारी। उपर के अनुसार दोष न हो उसके लिए हो सके तब तक सुबह में जाए । उपाश्रय न मिले तो शून्यगृह, देवकुलिका या फिर उद्यान में रहे । शून्यगृह आदि में गृहस्थ आते हों तो बीच में परदा करके रहे ।

कोष्ठक गाय-भेंस आदि को रखने की जगह या गौशाल सभा आदि मिला हो तो वहाँ कालभूमि देखकर वहाँ काल ग्रहण करे और ठल्ला मात्रा की जगह देखकर आए । अपवादे – विकाले प्रवेश करे । शायद आने में रात हो जाए तो रात को भी प्रवेश करे । रास्ते में पहरेदार आदि मिले तो कहे कि, 'हम साधु हैं, चोर नहीं ।' वसति में प्रवेश करने से यदि वो शून्यगृह हो तो वृषभ साधु दंड ऊपर से नीचे मारे, शायद भीतर सर्प आदि हो तो चले जाए या दूसरा कुछ भीतर हो तो पता चले । उसके बाद गच्छ प्रवेश करे । आचार्य के लिए तीन संथारा भूमि रखे । एक पवनवाली, दूसरी पवन रहित और तीसरी संथारा के लिए । वसति बड़ी हो तो दूसरे साधु के लिए दूर-दूर संथारा करना, जिससे गृहस्थ के लिए जगह न रहे । वसति छोटी हो तो पंक्ति के अनुसार संथारा करके बीच में पात्रा आदि रखे । स्थविर साधु दूसरे साधुओं को संथारा की जगह बाँट दे । यदि आने में रात हो गई हो तो कालग्रहण न करे, लेकिन निर्युक्ति संग्रहणी आदि गाथा धीरे स्वर से गिने । पहली पोरिसी करके गुरु के पास जाकर तीन बार सामायिक के पाठ उच्चारण पूर्वक संथारा पोरिसी पढ़ाए । लेकिन मात्रा आदि की शंका टालकर संथारा पर उत्तरपटो रखकर, पूरा शरीर पड़िलेहकर गुरु महाराज के पास संथारा की आज्ञा माँगे, हाथ का तकिया बनाकर, पाँव ऊपर करके सोए । पाँव ऊपर न रख सके तो पाँव संथारा पर रखकर सो जाए । पाँव लम्बे-टूँके करने से या बगल बदलते कायप्रमार्जन करे । रात को मात्रा आदि के कारण से उठे तो, उठकर पहले द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का उपयोग करे । द्रव्य से मैं कौन हूँ ? दीक्षित हूँ या अदीक्षित ? क्षेत्र से नीचा हूँ या मजले पर ? काल से रात है या दिन ? भाव से कायिकादि की शंका है कि क्या ? आँख में नींद हो तो श्वासोच्छ्वास में तकलीफ उत्पन्न हो, नींद ऊड़ जाए इसलिए संथारा में खड़े होकर प्रमार्जना करते हुए दरवज्जे के पास आए । बाहर चोर आदि का भय हो तो एक साधु को उठाए, एक साधु द्वार के पास खड़ा रहे और खुद कायिकादि शंका टालकर आए । कूत्ते आदि जानवर का भय हो तो दो साधु को जगाए, एक साधु दरवज्जे के पास खड़ा रहे, खुद कायिकादि वोसिरावे, तीसरा रक्षा करे । फिर वापस आकर इरियावही करके खुद सूक्ष्म आनप्राण लब्धि हो तो चौदह पूर्व याद करे । लब्धियुक्त न हो तो कम होते-होते स्वाध्याय करते हुए यावत् अन्त में जघन्य से तीन गाथा गिनकर वापस सो जाए । इस प्रकार विधि करने से निद्रा के प्रमाद का दोष दूर हो जाता है ।

उत्सर्ग से शरीर पर वस्त्र ओढ़े बिना सोए । ठंड़ आदि लग रहा हो तो एक, दो या तीन कपड़े ओढ़ ले उससे भी ठंड़ दूर न हो तो बाहर जाकर काऊसग्ग करे, फिर भीतर आए, फिर भी ठंड़ लग रही हो तो सभी कपड़े उतार दे । फिर एक-एक वस्त्र ओढ़े । इसके लिए गधे का दृष्टांत जानना । अपवाद से जैसे समाधि रहे ऐसा करना ।

सूत्र – ३१९-३३१

संज्ञी–इस प्रकार विहार करते-करते बीच में कोई गाँव आए । वो गाँव साधु के विहारवाला हो या विहार बगैर हो उसमें साधु के घर भी हो या न भी हो । यदि वो गाँव संविज्ञ साधु के विहारवाला हो तो गाँव में प्रवेश करे । पार्श्वस्थ आदि का हो तो प्रवेश न करे । जिनचैत्य हो तो दर्शन करने जाए । गाँव में सांभोगिक साधु हो तो उसके लिए आनेवाले लोगों के लिए जबरदस्ती करे तो वहाँ रहे एक साधु के साथ नए आए हुए साधु को भेजे । उपाश्रय छोटा हो तो नए आए हुए साधु दूसरे स्थान में ठहरे, वहाँ गाँव में रहे साधु उनको गोचरी लाकर दे । सांभोगिक साधु न हो तो आए हुए साधु गोचरी लाकर आचार्य आदि को प्रायोग्य देकर दूसरों का दूसरे उपयोग करे।

सूत्र – ३३२-३३६

साधर्मिक – आहार आदि का काम पूरा करके और ठल्ला मात्र की शंका टालकर शाम के समय साधर्मिक साधु के पास जाए, क्योंकि शाम को जाने से वहाँ रहे साधु को भिक्षा आदि काम के लिए आकुलपन न हो । साधु को आते देखकर वहाँ रहे साधु खड़े हो जाए और सामने जाकर दंड़-पात्रादि ले ले । वो न दे तो खींच ले। ऐसा करते हुए शायद पात्र नष्ट हो । जिस गाँव में रहे हैं वो गाँव छोटा हो तो, भिक्षा मिल सके ऐसा न हो और

दुपहर में जाने में रास्ते में चोर आदि का भय हो तो सुबह में दूसरे गाँव में जाए । उपाश्रय में जाते ही नीसिहि कहे । वहाँ रहे साधु निसीहि सुनकर सामने आए । खा रहे हो तो मुँह में रखा हुआ नीवाला खा ले, हाथ में लिया हुआ नीवाला पात्रा में वापस रख दे, सामने आकर आए हुए साधु का सम्मान करे । आए हुए साधु संक्षेप से आलोचना करके उनके साथ आहार करे । यदि आए हुए साधुओं ने खाया हो, तो वहाँ रहे साधुओं को कहे कि हमने खा लिया है अब तुम खाओ । आए हुए साधु को खाना हो तो यदि वहाँ लाया हुआ आहार बराबर हो तो सभी साथ में खाए और कम हो तो आहार आए हुए साधुओं को दे और अपने लिए दूसरा आहार लाकर खाए । आए हुए साधु की तीन दिन से आहार पानी आदि से भक्ति करनी चाहिए । शक्ति न हो तो बालवृद्ध आदि की भक्ति करनी चाहिए । आए हुए साधु उन गाँव में गोचरी के लिए जाए और वहाँ रहे साधु में तरुण दूसरे गाँव में गोचरी के लिए जाए ।

सूत्र – ३३७-३५५

वसति – तीन प्रकार की होती है । १. बड़ी, २. छोटी, ३. प्रमाणयुक्त । सबसे पहले प्रमाणयुक्त वसति ग्रहण करना । ऐसी न हो तो छोटी वसति ग्रहण करनी, छोटी भी न हो तो बड़ी वसति ग्रहण करना । यदि बड़ी वसति में ठहरे हो तो वहाँ दूसरे लोग दंड़पासक, पारदारिका आदि आकर सो जाए, इसलिए वहाँ प्रतिक्रमण, सूत्रपोरिसी, अर्थपोरिसी करते हुए और आते जाते लोगों में किसी असहिष्णु हो तो चिल्लाए, उससे झगड़ा हो, पात्र आदि तूट जाए, ठल्ला मात्रा की शंका रोके तो बीमारी आदि हो, दूर न जा सके, देखी हुई जगह में शंका टाल दे तो संयम विराधना हो । सबके देखते ही शंका टाले तो प्रवचन की लघुता हो । रात को वसति में पूंजते-पूंजते जाए, तो वो देखकर किसी को चोर का शक हो और शायद मार डाले । सागारिक-गृहस्थ को स्पर्श हो जाए तो उस स्त्री को लगे कि, यह मेरी उम्मीद रखता है । इसलिए दूसरों को कहे कि, 'यह मेरी उम्मीद करता है' सुनकर लोग गुस्सा हो जाए । साधु को मारे, दिन में किसी स्त्री या नपुंसक की खूबसूरती देखकर साधु पर रागवाला बने, इसलिए रात को वहीं सो जाए और साधु को बलात्कार से ग्रहण करे इत्यादि दोष बड़ी वसति में उतरने में रहे हैं । इसलिए बड़ी वसति में न उतरना चाहिए । छोटी वसति में उतरने से रात को आते-जाते किसी पर गिर पड़े, जागते ही उसे चोर की शंका हो । रात को नहीं देख सकने से युद्ध हो, उसमें पात्र आदि तूट जाए इसलिए संयम-आत्मविराधना हो, इसलिए छोटी वसति में नहीं उतरना चाहिए । प्रमाणसर वसति में उतरना वो इस प्रकार एक एक साधु के लिए तीन तीन हाथ मोटी जगह रखे एक हाथ को चार अंगूल बड़ा संथारा फिर बीस अंगूल जगह खाली फिर एक हाथ जगह में पात्रादि रखना, उसके बाद दूसरे साधु के आसन आदि करना । पात्रादि काफी दूर रखे तो बिल्ली, चूहाँ आदि से रक्षा न हो सके । काफी पास में पात्रादि रखे तो शरीर घूमाते समय ऊपर-नीचे करने से पात्रादि को धक्का लगे तो पात्रादि तूट जाए । इसलिए बीस अंगूल का फाँसला हो तो, किसी गृहस्थ आदि झोर करके बीच में सो जाए, तो दूसरे दोष लगे । तो ऐसे स्थान के लिए वसति का प्रमाण इस प्रकार जानना । एक हाथ देह, बीस अंगूल खाली, आँठ अंगूल में पात्रा, फिर बीस अंगूल खाली, फिर दूसरे साधु, इस प्रकार तीन हाथ से एक साधु से दूसरा साधु आता है । बीच में दो हाथ का अंतर रहे । एक साधु से दूसरे साधु के बीच दो हाथ की जगह रखना । दो हाथ से कम फाँसला हो तो, दूसरों को साधु का स्पर्श हो जाए तो भुक्तभोगी की पूर्व क्रीड़ा का स्मरण हो जाए । कुमार अवस्था में दीक्षा ली हो तो उसे साधु का स्पर्श होने से स्त्री का स्पर्श कैसे होंगे ? उसकी नियत जगे । इसलिए बीचमें दो हाथ का फाँसला रखना चाहिए, इससे एक-दूसरे को कलह आदि भी न हो । दीवार से एक हाथ दूर संथारा करना । पाँव के नीचे भी आने-जाने का रास्ता रखना । बड़ी वसति हो तो दीवार से तीन हाथ दूर संथारा करना । प्रमाणयुक्त वसति न हो तो छोटी वसति में रात को यतनापूर्वक आना जाना । पहले हाथ से परामर्श करके बाहर नीकलना । पात्रादि खड्डा हो तो उसमें रखना । खड्डा न हो तो रस्सी बाँधकर उपर लटका दे । बड़ी वसति में ठहरना पड़े तो साधु को दूर-दूर सो जाना । शायद वहाँ कुछ लोग आकर कहे कि, 'एक ओर इतनी जगह में सो जाओ ।' तो साधु एक ओर हो जाए, वहाँ परदा या खड़ी से निशानी कर ले । वहाँ दूसरे गृहस्थ आदि हो तो, आते जाते प्रमार्जना आदि न करे । और 'आसज्जा-आसज्जा' भी न करे । लेकिन खाँसी

आदि से दूसरों को बताए ।

सूत्र – ३५६-३८७

स्थानस्थित – गाँव में प्रवेश करना हो, उस दिन सुबह का प्रतिक्रमण आदि करके, स्थापना कुल, प्रत्यनीक कुल, प्रान्तकुल आदि का हिस्सा करे इसलिए कुछ घर में गोचरी के लिए जाना, कुछ घर में गोचरी के लिए न जाना । फिर अच्छे सगुन देखकर गाँव में प्रवेश करे । वसति में प्रवेश करने से पहले कथालब्धिसम्पन्न साधु को भेजे । वो साधु गाँव में जाकर शय्यातर के आगे कथा करे फिर आचार्य महाराज का आगमन होने पर खड़े होकर विनय सँभाले और शय्यातर कहे कि, यह हमारे आचार्य भगवंत हैं । आचार्य भगवंत कहे कि, इस महानुभाव ने हमको वसति दी है । यदि शय्यातर आचार्य के साथ बात-चीत करे तो अच्छा, न करे तो आचार्य उसके साथ बात-चीत करे क्योंकि यदि आचार्य शय्यातर के साथ बात न करे, तो शय्यातर को होता है कि, यह लोग भी योग्य नहीं जानते । वसति में आचार्य के लिए तीन जगह रखकर स्थविर साधु दूसरे साधुओं के लिए रत्नाधिक के क्रम से योग्य जगह बाँट दे । क्षेत्रप्रत्युप्रेक्षक आए हुए साधुओं को ठल्ला, मात्र की भूमि, पात्रा रंगने की भूमि, स्वाध्याय भूमि आदि दिखाए और साधु में जो किसी तपस्वी हो, किसी को खाना हो, तो जिनचैत्य दर्शन करने के लिए जाते हुए स्थापनाकुल श्रावक के घर दिखाए । प्रवेश के दिन किसी को उपवास हो तो वो मंगल है । जिनालय जाते समय आचार्य के साथ एक-दो साधु पात्रा लेकर जाए । क्योंकि वहाँ किसी गृहस्थ को गोचरी देने की भावना ही तो ले सके । यदि पात्रा न हो तो गृहस्थ का भरोसा तूट जाए या साधु ऐसा कहे कि, 'पात्रा लेकर आएंगे ।' तो गृहस्थ वो चीज रख दे, इसलिए स्थापना दोष लगे । सभी साधु को साथ में नहीं जाना चाहिए, यदि सब साथ में जाए तो गृहस्थ को ऐसा होता है कि, 'किसको दूँ और किसको न दूँ' इसलिए साधु को देखकर भय लगे या तो ऐसा हो कि, 'यह सभी ब्राह्मणभट्ट जैसे भूखे हैं ।' इसलिए आचार्य के साथ तीन, दो या एक साधु पात्रा लेकर जाए और गृहस्थ बिनती करे तो घृत आदि वहोरे । यदि उस क्षेत्र में पहले मासकल्प न किया हो यानि पहले आए हुए हों, तो परिचित साधु चैत्यदर्शन करने के लिए जाए तब या गोचरी के लिए जाए तब दान देनेवाले आदि के कुल दिखाए या तो प्रतिक्रमण करने के बाद दानादि कुल कहे । प्रतिक्रमण करने के बाद आचार्य क्षेत्रप्रत्युप्रेक्षक को बुलाकर स्थापनादि कुल पूछे–क्षेत्रप्रत्युप्रेक्षक वो बताए । क्षेत्रप्रत्युप्रेक्षक को पूछे बिना साधु स्थापनादि कुल में जाए तो संयम विराधना, आत्मविराधना आदि दोष हो । स्थापना कुल में गीतार्थ संघाटक जाए इस प्रकार स्थापनादि कुल स्थापन करने के कारण यह है कि आचार्य ग्लान प्राघुर्णक आदि को उचित भिक्षा मिल सके । यदि सभी साधु स्थापना कुल में भिक्षा लेने जाए तो गृहस्थ को कदर्थना हो और आचार्य आदि के प्रायोग्य द्रव्य का क्षय हो । जिससे चाहे ऐसी चीज न मिले । जिस प्रकार किसी पुरुष पराक्रमी शिकारी कुत्ते को छू-छू करने के बावजूद कुत्ता दौड़े नहीं और काम न करे । इस प्रकार बार-बार बिना कारण स्थापनादि कुल में से आहार आदि ग्रहण करने से जब ग्लान, प्राघुर्णक आदि के लिए जरुर होती है तब आहारादि नहीं मिल सकते । क्योंकि उसने काफी साधुओं को घृतादि देने के कारण से घृत आदि खत्म हो जाए । प्रान्त-विरोधी गृहस्थ हो तो साधु को घी आदि दे दिया हो तो स्त्री को मारे या मार भी डाले या उस पर गुस्सा करे कि तुने साधुओं को घृतादि दिया इसलिए खत्म हो गया, भद्रक हो तो नया खरीदे या करवाए । स्थापना कुल रखने से ग्लान, आचार्य, बाल, वृद्ध, तपस्वी प्राघुर्णक आदि की योग्य भक्ति की जाती है, इसलिए स्थापना कुल रखने चाहिए, वहाँ कुछ गीतार्थ के अलावा सभी साधु को नहीं जाना । कहा है कि आचार्य की अनुकंपा भक्ति से गच्छ की अनुकंपा, गच्छ की अनुकंपा से तीर्थ की परम्परा चलती है । इस स्थापनादि कुल में थोड़े-थोड़े दिन के फाँसले से भी कारण बिना जाना । क्योंकि उन्हें पता चले कि यहाँ कुछ साधु आदि रहे हुए हैं । इसके लिए गाय और बगीचे का दृष्टांत जानना । गाय को दोहते रहे और बगीचे में से फूल लेते रहे तो हररोज दूध, फूल मिलते रहे, न ले तो उल्टा सूख जाए ।

सूत्र – ३८८-४२८

दश प्रकार के साधु आचार्य की वैयावच्च सेवा के लिए अनुचित है । आलसी ! घसिर ! सोए रहनेवाला ।

तपस्वी, क्रोधी, मानी, मायी, लालची, उत्सुक, प्रतिबद्ध ।

आलसी – प्रमादी होने से समय के अनुसार गोचरी पर न जाए । **घसिर** – ज्यादा खाते रहने से अपना ही आहार पहले पूरा करे, उतने में भिक्षा का समय हो जाए । **ऊंघणशी** – सोता रहे, वहाँ गोचरी का समय पूरा हो जाए । शायद जल्दी जाए, तब भिक्षा की देर हो तो वापस आकर सो जाए उतने में भिक्षा का समय नींद में चला जाए । **तपस्वी** – गोचरी जाए तो तपस्वी होने से देर लगे । इसलिए आचार्य को परितापनादि हो । तपस्वी यदि पहली आचार्य की गोचरी लाए तो तपस्वी को परितापनादि हो । **क्रोधी** – गोचरी करके जाए वहाँ क्रोध करे । मानी – गृहस्थ सत्कार न करे तब उसके यहाँ गोचरी के लिए न जाए । **मायी** – अच्छा अच्छा एकान्त में खाकर रूखा-सूखा वसति में लाए । **लोभी** – जितना मिले वो सब वहोर ले । **उत्सुक** – रास्ते में नट आदि खेल रहे हो तो देखने के लिए खड़ा रहे । **प्रतिबद्ध** – सूत्र अर्थ में इतना लीन रहे कि गोचरी का समय पूरा हो जाए ।

उपर बताया उसके अलावा जो गीतार्थ प्रियधर्मी साधु है वो आचार्य की भक्ति के लिए योग्य हैं, उन्हें गोचरी के लिए भेजे, क्योंकि गीतार्थ होने से वो गृहस्थ के वहाँ गोचरी आदि कितने हैं ? इत्यादि विवेक रखकर भिक्षा ग्रहण करे, परिणाम से घृतादि द्रव्य की हंमेशा प्राप्ति करके भाव की वृद्धि करनेवाले होते हैं । स्थापना कुल में एक संघाटक जाए और दूसरे कुल में बाल, वृद्ध, तपस्वी आदि जाए । यहाँ शक होता है कि – जिस गाँव में गच्छ रहा है उस गाँव में पहले जाँच करके आए हैं, तो फिर जवान साधु को दूसरे गाँव में गोचरी के लिए भेजने का क्या प्रयोजन ? तो बताते हैं कि बाहर भेजने के कारण यह है कि, गाँव में रहे गृहस्थ को ऐसा लगे कि, यह साधु बाहर गोचरी के लिए जाते हैं, नए साधु आए तब अपने यहाँ आते हैं, इसलिए बाल, वृद्ध आदि को दो । इस प्रकार गोचरी के लिए जानेवाले आचार्य आदि को पूछकर नीकलना चाहिए । पूछे बिना जाए तो नीचे के अनुसार दोष लगे ।

रास्ते में चोर आदि हो, वो उपधि को या खुद को उठा ले जाए तो उन्हें ढूँढ़ने में काफी मुसीबत उठानी पड़े। प्राघुर्णक आए हो उनके योग्य कुछ लाना हो उसका पता न चले । ग्लान के योग्य या आचार्य के योग्य कुछ लाना हो तो उसका पता न चले । रास्ते में कुत्ते आदि का भय हो तो वो काट ले । किसी गाँव में स्त्री या नपुंसक के दोष हो तो उसका पता न चले । शायद भिक्षा के लिए जाने के बाद मूर्छा आ जाए, तो क्या जाँच करे ? इसलिए जाते समय आचार्य को कहे कि, 'मैं किसी गाँव में गोचरी के लिए जाता हूँ ।' आचार्यने जिस किसी को बताया हो, उसे कहकर शायद नीकलते समय कहना भूल जाए और थोड़ा दूर जाने के बाद याद आए, तो वापस आकर कहे, वापस आकर कहकर जाने का समय न मिलता हो तो रास्ते में ठल्ला, मात्रु या गोचरी पानी के लिए नीकले हुए साधु को कहे कि, 'मैं कुछ गाँव में गोचरी के लिए जाता हूँ, तुम आचार्य भगवंत को कह देना ।' जिस गाँव में गोचरी के लिए गया है वो गाँव किसी कारण से दूर हो, छोटा हो या खाली हो, तो किसी के साथ कहलाए और दूसरे गाँव में गोचरी के लिए जाए । चोर आदि साधु को उठा ले जाए, तो साधु रास्ते में अक्षर लिखता जाए या वस्त्र फाड़कर उसके टुकड़े रास्ते में फेंकता जाए । जिससे जाँच करनेवाले को पता चल सके कि, इस रास्ते से साधु को उठा ले गए लगता है । गोचरी आदि के लिए गए हुए साधु को आने में देर लगे तो वसति में रहे साधु न आए हुए साधु के लिए विशिष्ट चीज रखकर जाँच करने जाए । न आया हुआ साधु बिना बताए गया हो, तो चारों ओर जाँच करे, रास्ते में कोई निशानी न मिले तो गाँव में जाकर पूछे, फिर भी पता न चले तो गाँव में, इकट्ठे हुए लोगों को कहे कि हमारे साधु इस गाँव में भिक्षा के लिए आए थे उनके कोई समाचार नहीं है । इस प्रकार कुछ पता न चले तो दूसरे गाँव में जाकर जाँच करे । दूसरे गाँव में गोचरी के लिए जाने से–आधाकर्मादि दोष से बचते हैं, आहारादि ज्यादा मिलती है। अपमान आदि नहीं होता । मोह नहीं होता । वीर्याचार का पालन होता है । (सवाल) वृषभ – वैयावच्ची साधु को बाहर भेजे । उसमें आचार्य ने अपने आत्मा की ही अनुकंपा की ऐसा नहीं कहते ? ना – आचार्य वृषभ साधु को भेजे उसमें शिष्य पर अनुकंपा होती । उल्टा साधु भूख और प्यास से पीड़ित होकर काल कर जाए तो ? नहीं यदि भूख और प्यास बरदास्त कर सके ऐसा न हो, गर्मी हो, तपस्वी हो, तो प्रथमालिकादि

आदि करके जाए । रूखा-सूखा खाकर या यतनापूर्वक खाकर जाए । जघन्य तीन कवल या तीन भिक्षा उत्कृष्ट से पाँच कवल या पाँच भिक्षा। सहिष्णु हो तो प्रथमालिका किए बिना जाए गोचरी लाने की विधि बताते हुए कहते हैं। एक पात्र में आहार, दूसरे पात्रा में पानी, एक में आचार्य आदि प्रायोग्य आहार, दूसरे में जीव संसृष्टादि न हो ऐसा आहार या पानी ग्रहण करे ।

सूत्र – ४२९-४३५

पड़िलेहणाद्वार दो प्रकार से एक केवली की दूसरी छद्मस्थ की । दोनों बाहर से और अभ्यंतर से बाहर यानि द्रव्य और अभ्यंतर यानि भाव । केवली की पड़िलेहणा प्राणी से संसक्त द्रव्य विषय की होती है । यानि कपड़े आदि पर जीवजन्तु हो तो पड़िलेहणा करे ? छद्मस्थ की पड़िलेहणा जानवर से संसक्त या असंसक्त द्रव्य विषय की होती है । यानि कपड़े आदि पर जीवजन्तु हो या न हो, तो भी पड़िलेहणा करनी पड़ती है । पड़िलेहणा द्रव्य से केवली के लिए वस्त्र आदि जीवजन्तु से संसक्त हो तो पड़िलेहणा करते हैं लेकिन जीव से संसक्त न हो तो पड़िलेहणा नहीं होती । भाव से केवली की पड़िलेहणा में – वेदनीय कर्म काफी भुगतना हो और आयु कर्म कम हो तो केवली भगवंत केवली समुद्घात करते हैं ।

द्रव्य से छद्मस्थ – संसक्त या असंसक्त वस्त्र आदि की पड़िलेहणा करनी वो। भाव से छद्मस्थ की – रात को जगे तब सोचे कि, 'मैंने क्या किया, मुझे क्या करना बाकी है, करने के योग्य तप आदि क्या नहीं करता ?' इत्यादि

सूत्र – ४३६-४६९

स्थान, उपकरण, स्थंड़िल, अवष्टंभ और मार्ग का पड़िलेहण करना । **स्थान** – तीन प्रकार से । कायोत्सर्ग, बैठना, सोना । कायोत्सर्ग ठल्ला मात्रा जाकर गुरु के पास आकर इरियावही करके काऊस्सग्ग करे । योग्य स्थान पर चक्षु से देखकर प्रमार्जना करके काऊस्सग्ग करे । काऊस्सग्ग गुरु के सामने या दोनों ओर या पीछे न करना, एवं आने-जाने का मार्ग रोककर न करना । **बैठना** – बैठते समय जंघा और साँथल का बीच का हिस्सा प्रमार्जन करने के बाद उत्कटुक आसन पर रहकर, भूमि प्रमार्जित करके बैठना । **सोना** – सो रहे हो तब बगल बदलते हुए प्रमार्जन करके बगल बदलना । सोते समय भी पूंजकर सोना । **उपकरण** – दो प्रकार से । १. वस्त्र, २. पात्र सम्बन्धी । सुबह में और शाम को हंमेशा दो समय पड़िलेहणा करना । पहले मुहपत्ति पड़िलेहने के बाद दूसरे वस्त्र आदि की पड़िलेहणा करना । **वस्त्र की पड़िलेहणा विधि** – पहले मति कल्पना की पूरे वस्त्र के तीन हिस्से करके देखना, फिर पीछे की ओर तीन टुकड़े करके देखना । तीन बार छ-छ पुरिमा करना । उत्कटुक आसन पर बैठकर विधिवत् पड़िलेहणा करे, पड़िलेहणा करते समय इतनी परवा करना । पड़िलेहण करते समय वस्त्र या शरीर को न नचाना । साँबिल की प्रकार वस्त्र को ऊंचा न करना । वस्त्र को नौ अखोड़ा पखोड़ा और छ बार प्रस्फोटन करना, पड़िलेहणा करते हुए वस्त्र या देह को ऊपर छत या छापरे को या दीवार या भूमि को लगाना । पड़िलेहण करते समय जल्दबाझी न करना । वेदिका दोष का वर्जन करना । उर्ध्ववेदिका – ढँकनी पर हाथ रखना । अधोवेदिका ढँकनी के नीचे हाथ रखना । तिर्यक् वेदिका – संड़ासा के बीच में हाथ रखना । द्विघात वेदिका – दो हाथ के बीच में पाँव रखना । एगतो वेदिका – एक हाथ दो पाँव के भीतर दूसरा हाथ बाहर रखना । वस्त्र और शरीर अच्छी प्रकार से सीधे रखना । वस्त्र लम्बा न रखे । वस्त्र को लटकाकर न रखे । वस्त्र के अच्छी प्रकार से तीन हिस्से करे – एक के बाद एक वस्त्र की पड़िलेहणा करे । एक साथ ज्यादा वस्त्र न देखे । अच्छी प्रकार इस्तमाल पूर्वक वस्त्र की पड़िलेहणा करे । अखोड़ा-पखोड़ा की गिनती अच्छी प्रकार से रखे ।

सुबह में पड़िलेहणा का समय – अरूणोदय-प्रभा फटे तब पड़िलेहणा करना । अरूणोदय प्रभा फटे तब आवश्यक प्रतिक्रमण करने के बाद पड़िलेहणा करना एक दूसरे का मुँह देख सके, तब पड़िलेहणा करना । हाथ की लकीर दिखे तब पड़िलेहणा करना । सिद्धांतवादी कहते हैं कि यह सभी आदेश सही नहीं है । क्योंकि–उपाश्रय में अंधेरा हो तो सूर्य नीकला हो तो भी हाथ की लकीरे न दिखे । बाकी के तीन में अंधेरा होता है । उत्सर्ग की

प्रकार अंधेरा पूरा होने के बाद मुहपत्ति, रजोहरण, दो निषद्या-रजोहरण पर का वस्त्र, चौलपट्टा तीन कपड़े संथारो और उतरपट्टा इन दश से पड़िलेहण पूरी होते ही सूर्योदय होता है । उस प्रकार से पड़िलेहण शुरू करना । अपवाद से जितना समय उस प्रकार से पड़िलेहण करे । पड़िलेहण में विपर्यास न करे । अपवाद से करे । विपर्यास दो प्रकार से पुरुष विपर्यास और उपधि विपर्यास । पुरुष विपर्यास – आम तोर पर आचार्य आदि की पड़िलेहण करनेवाले अभिग्रहवाले साधु पहुँच सके ऐसा हो, तो गुरु को पूछकर खुद की या ग्लान आदि की उपधि पड़िलेहणा करे । यदि अभिग्रहवाले न हो और अपनी उपधि पड़िलेहे तो अनाचार होता है । और पड़िलेहण करते आपस में मैथुन सम्बन्धी कथा आदि बातें करे, श्रावक आदि को पच्चक्खाण करवाए, साधु का पाठ दे या खुद पाठ ग्रहण करे, तो भी अनाचार, छह काय जीव की विराधना का दोष लगे । किसी दिन साधु कुम्हार आदि की वसति में उतरे हों, वहाँ पड़िलेहण करते बात-चीत करते उपयोग न रहने से, पानी का मटका आदि फूट जाए, इसलिए वो पानी, मिट्टी, अग्नि, बीज, कुंथुंवा आदि पर जाए, इसलिए उस जीव की विराधना हो, जहाँ अग्नि, वहाँ वायु यकीनन होता है । इस प्रकार से छ जीवकाय की विराधना न हो उसके लिए पड़िलेहणा करनी चाहिए । उपधि विपर्यास – किसी चोर आदि आए हुए हों, तो पहले पात्र की पड़िलेहणा करके, फिर वस्त्र की पड़िलेहणा करे । इस प्रकार विकाल सागारिक गृहस्थ आ जाए तो भी पड़िलेहण में विपर्यास करे । पड़िलेहण और दूसरे भी जो अनुष्ठान भगवंत ने बताए हैं वो सभी एक, दूसरे को बाधा न पहुँचे उस प्रकार से सभी अनुष्ठान करने से दुःख का क्षय होता है । यानि कर्म की निर्जरा कराने में समर्थ होता है ।

श्री जिनेश्वर भगवंत के बताए हुए योग में से एक-एक योग की सम्यक् प्रकार से आराधना करते हुए अनन्त आत्मा केवली बने हैं । उस अनुसार पड़िलेहण करते हुए भी अनन्त आत्मा मोक्ष में गई है, तो हम केवल पड़िलेहण करते हैं, तो फिर दूसरे अनुष्ठान क्यों ? यह बात सही नहीं, क्योंकि दूसरे अनुष्ठान न करे और केवल पड़िलेहण करते रहे वो तो आत्मा पूरी प्रकार आराधक नहीं हो सकता केवल देश से ही आराधक बने । इसलिए सभी अनुष्ठान का आचरण करना चाहिए ।

सूत्र – ४७०-४७६

सर्व आराधक किसे कहे ? पाँच इन्द्रिय से गुप्त, मन, वचन और काया के योगयुक्त बारह प्रकार के तप का आचरण, इन्द्रिय और मन पर का काबू, सत्तरह प्रकार के संयम का पालन करनेवाला संपूर्ण आराधक होता है । पाँच इन्द्रिय से गुप्त – यानि पाँच इन्द्रिय के विषय शब्द, रूप, रस और स्पर्श पाने की उम्मीद न रखना, यानि प्राप्त हुए विषय के प्रति अच्छे हो – अनुकूल हो उसमें राग न करना, बूरे-प्रतिकूल हो उसमें द्वेष न करना । मन, वचन और काया के योग से युक्त – यानि मन, वचन और काया को अशुभ कर्मबंध हो ऐसे व्यापार से रोकने के लिए और शुभ कर्मबंध हो उसमें प्रवृत्त करने के लिए । मन से अच्छा सोचना, वचन से अच्छे निरवद्य वचन बोलना और काया को संयम के योग में रोके रखना । बूरे विचार आदि आए तो उसे रोककर अच्छे विचार में मन को ले जाना । तप-छह बाह्य और छह अभ्यंतर ऐसे बार प्रकार का तप रखना । नियम – यानि इन्द्रिय और मन को काबू में रखना। एवं क्रोध, मान, माया और लोभ न करना । संयम सत्तरह प्रकार से हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चऊरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संयम इन जीव की विराधना न हो ऐसा व्यवहार करना चाहिए । अजीव संयम – लकड़ा, वस्त्र, किताब आदि पर लील फूल – निगोद आदि लगा हुआ हो तो उसे ग्रहण न करना । प्रेक्षा संयम-चीज देखकर पूंजना प्रमार्जन करने लेना, रखना, एवं चलना, बैठना, शरीर हिलाना आदि कार्य करते हुए देखना, प्रमार्जन करना, प्रत्येक कार्य करते हुए चक्षु आदि से पड़िलेहण करना । उपेक्षासंयम दो प्रकार से – साधु सम्बन्धी, गृहस्थ सम्बन्धी । साधु संयम में अच्छी प्रकार व्यवहार न करता हो तो उसे संयम में प्रवर्तन करने की प्रेरणा देनी चाहिए, गृहस्थ के पापकारी व्यापार में प्रेरणा न करना । इस प्रकार आराधना करनेवाला पूरी प्रकार आराधक हो सकता है ।

सूत्र – ४७७-४९७

सुबह में पड़िलेहण करने के बाद स्वाध्याय करना, पादोन पोरिसी के समय पात्रा की पड़िलेहणा करनी चाहिए । फिर शाम को पादोन-पोरिसी-चरम पोरिसी में दूसरी बार पड़िलेहणा करनी चाहिए । पोरिसीकाल निश्चय से और व्यवहार से ऐसे दो प्रकार से हैं ।

महिना	पोरिसी पगला – अंगुल	चरम पोरिसी पगला – अंगुल
आषाढ़ सुद–१५	२–७	२–६
श्रावण सुद–१५	२–४	२–१०
भादो सुद–१५	२–५	३–४
आसो सुद–१५	३–०	३–८
कार्तिक सुद–१५	३–४	४–०
मागसर सुद–१५	३–८	४–६
पोष सुद–१५	४–०	४–१०
महा सुद–१५	३–८	४–६
फागुन सुद–१५	३–४	४–०
चैत्र सुद–१५	३–०	३–८
वैशाख सुद–१५	२–८	३–४
जेठ सुद–१५	२–४	२–१०

पात्रा की पड़िलेहण करते समय पाँच इन्द्रिय का उपयोग अच्छी प्रकार से करना । पात्रा जमीं से चार अंगुल ऊपर रखना । पात्रादि पर भ्रमर आदि हो, तो यतनापूर्वक दूर रखना, पहले पात्रा फिर गुच्छा और उसके बाद पड़ला की पड़िलेहणा करनी । पड़िलेहण का समय गुजर जाए तो, एक कल्याणक का प्रायश्चित्त आता है । यदि पात्रा को गृहकोकिला आदि का घर लगा हो तो उस पात्रा को प्रहर तक एक ओर रख देना उतने में घर गिर पड़े तो ठीक वरना यदि दूसरा हो, तो पूरा पात्र रख देना । दूसरा पात्र न हो तो पात्रा का उतना हिस्सा काटकर एक ओर रख दे यदि सूखी मिट्टी का घर किया हो और उसमें यदि कीड़े न हो तो वो मिट्टी दूर कर दे । ऋतुबद्ध काल में – शर्दी में और गर्मी में पात्रादि पड़िलेहण करके बाँधकर रखना । क्योंकि अग्नि, चोर आदि के भय के समय, अचानक सारे उपधि आदि लेकर सूख से नीकल सके, यदि बाँधकर न रखा हो तो अग्नि में जल जाए । जल्दबाझी में लेने जाए तो पात्रादि तूट जाए, बारिस में इसका ड़र नहीं रहता ।

सूत्र – ४९८-५३२

स्थंड़िल-अनापात और असंलोक शुद्ध हैं । अनापात-यानि स्वपक्ष (साधु) परपक्ष (दूसरे) में से किसी का वहाँ आवागमन न हो । असंलोक यानि स्थंड़िल बैठे हो वहाँ कोई देख न सके । स्थंड़िल भूमि निम्न प्रकार होती है

अनापात और असंलोक – किसी का आना-जाना न हो, ऐसे कोई देखे नहीं । अनापात और संलोक – किसी का आना-जाना न हो लेकिन देख सकते हो । आपात दो प्रकार से स्वपक्ष संयत वर्ग परपक्ष गृहस्थ आदि । स्वपक्ष आपात दो प्रकार से साधु और साध्वी । साधु में संविज्ञ और असंविज्ञ । संविज्ञ में धर्मी और अधर्म । परपक्ष आपात में दो प्रकार – मानव आपात और तिर्यंच आपात । मानव आपात तीन प्रकार से – पुरुष, स्त्री और नपुंसक, तिर्यंच आपात तीन प्रकार से – पुरुष, स्त्री और नपुंसक उसमें पुरुष आपात तीन प्रकार से – राजा श्रेष्ठि और सामान्य । और फिर शौचवादी और अशौचवादी । इस प्रकार स्त्री और नपुंसक में भी तीन भेद समझना । उपर्युक्त तिर्यंच आपात दो प्रकार से – लड़ाकु और बिना लड़ाकु और फिर जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । हरएक में पुरुष, स्त्री और नपुंसक जाति के उसमें निन्दनीय और अनिन्दनीय, मुख्यतया अनापात और असंलोक में स्थंड़िल

जाना, मनोज्ञ के आपात में स्थंड़िल जा सकते हैं । साध्वी का आपात एकान्त में वर्जन करना । परपक्ष के आपात में दोष, लोगों को होता है कि, हम जिस दिशा में स्थंड़िल जाते हैं वहाँ यह साधुएं आते हैं इसलिए हमारा अपमान करनेवाला है या हमारी स्त्रियों का अभिलाष होगा इसलिए इस दिशा में जाते हैं । इससे शासन का उड्डाह होता है । शायद पानी कम हो, तो उससे उड्डाह हो । किसी बड़ा-पुरुष साधु को उस दिशा में स्थंड़िल जाते देखकर भिक्षा आदि का निरोध करे । श्रावक आदि को चारित्र सम्बन्ध शक पड़े । शायद किसी स्त्री नपुंसक आदि बलात्कार से ग्रहण करे । तिर्यंच के आपात में दोष – लड़ाकु हो तो शींग आदि मारे, काट ले । हिंमत हो तो भक्षण करे । गधी आदि हो तो मैथुन का शक हो जाए । संलोक में दोष – तिर्यंच के संलोक में कोई दोष नहीं होते । मानव के संलोक में उड्डाह आदि दोष होते हैं । स्त्री आदि के संलोक में मूर्छा या अनुराग हो । इसलिए स्त्री आदि के संलोक हो वहाँ स्थंड़िल न जाना । आपात और संलोक के दोष हो ऐसा न हो वहीं पर स्थंड़िल जाना साध्वीजीओ का आपात हो लेकिन संलोक न हो, वहाँ स्थंड़िल जाना चाहिए । स्थंड़िल जाने के लिए संज्ञा-कालसंज्ञा-तीसरी पोरिसी में स्थंड़िल जाना वो । अकालसंज्ञा-तीसरी पोरिसी के सिवा जो समय है उसमें स्थंड़िल जाना वो, या गोचरी करने के बाद स्थंड़िल जाना वो कालसंज्ञा या अर्थ पोरिसी के बाद स्थंड़िल जाना वो कालसंज्ञा ।

बारिस के अलावा के काल में ड़गल (ईंट आदि का टुकड़ा) लेकर उससे साफ करके तीन बार पानी से आचमन–साफ करना । साँप, बिच्छु, वींछी आदि के बील न हो, कीड़े, जीवजन्तु या वनस्पति न हो, एवं प्रासुक समान भूमि में छाँव हो वहाँ स्थंड़िल के लिए जाना । प्रासुक भूमि उत्कृष्ट से बारह योजन की, जघन्य से एक हाथ लम्बी चौड़ी, आगाढ़ कारण से जघन्य से चार अंगुल लम्बी चौड़ी और दश दोष से रहित जगह में उपयोग करना । आत्मा उपघात-बागीचा आदि में जाने से । प्रवचत उपघात-बूरा स्थान विष्टा आदि हो वहाँ जाने से । संयम उपघात – अग्नि, वनस्पति आदि हो, जहाँ जाने से षट्जीवनिकाय की विराधना हो । विषम जगह में जाते ही गिर जाए, इससे आत्मविराधना, मात्रा आदि को रेला हो तो उसमें त्रस आदि जीव की विराधना, इसलिए संयम विराधना । पोलाण युक्त जगह में जाने से, उसमें बिच्छु आदि हो तो ड़ँस ले इसलिए आत्म विराधना । पोलाणयुक्त स्थान में पानी आदि जाने से त्रस जीव की विराधना, इसलिए संयम विराधना । घरों के पास में जाए तो संयम विराधना और आत्म विराधना । बीलवाले जगह में जाए तो संयम विराधना और आत्म विराधना । बीज त्रस आदि जीव हो वहाँ जाए तो संयम विराधना और आत्मविराधना । सचित्त भूमि में जाए तो संयम विराधना और आत्म विराधना, एक हाथ से कम अचित्त भूमि में जाए, संयम विराधना, आत्म विराधना । इन से एकादि सांयोगिक भांगा १०२४ होते हैं

सूत्र – ५३३-५३७

अवष्टम्भ – लींपित दीवार खँभा आदि का सहारा न लेना । वहाँ हंमेशा त्रस जीव रहे होते हैं । पूंजकर भी सहारा मत लेना । सहारा लेने की जरुर हो तो फर्श आदि लगाई हुई दीवार आदि हो वहाँ पूंजकर सहारा लेना, सामान्य जीव का मर्दन आदि हो तो संयम विराधना और बिच्छु आदि हो तो आत्म विराधना ।

सूत्र – ५३८-५४७

मार्ग – रास्ते में चलते ही चार हाथ प्रमाण भूमि देखकर चलना, क्योंकि चार हाथ के भीतर दृष्टि रखी हो तो जीव आदि देखते ही अचानक पाँव रखने से रूक नहीं सकते, चार हाथ से दूर नजर रखी हो तो पास में रहे जीव की रक्षा नहीं हो सकती, देखे बिना चले तो रास्ते में खड्डा आदि आने से गिर पड़े, इससे पाँव में काँटा आदि लगे या मोच आ जाए, एवं जीवविराधना आदि हो, पात्र तूटे, लोकोपवाद हो संयम और आत्म विराधना हो । इसलिए चार हाथ प्रमाण भूमि पर नजर रखकर उपयोगपूर्वक चले । इस प्रकार पड़िलेहण की विधि गणधर भगवंत ने बताई है । इस पड़िलेहण विधि का आचरण करने से चरणकरणानुयोग वाले साधु कईं भव में बाँधे अनन्त कर्म को खपाते हैं ।

सूत्र – ५४८-५५३

अब **पिंड़ और एषणा** का स्वरूप गुरु उपदेश के अनुसार कहते हैं ।

पिंड़ की एषणा तीन प्रकार से – १. गवेषणा, २. ग्रहण एषणा, ३. ग्रास एषणा ।

पिंड़ चार प्रकार से – नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव । नाम और स्थापना का अर्थ सुगम है, द्रव्य पिंड़ तीन प्रकार से – सचित्त, अचित्त और मिश्र, उसमें अचित्त पिंड़ दश प्रकार से –

१. पृथ्वीकाय पिंड़, २. अप्काय पिंड़, ३. तेजस्काय पिंड़, ४. वायुकाय पिंड़, ५. वनस्पतिकाय पिंड़, ६. बेइन्द्रिय पिंड़, ७. तेइन्द्रिय पिंड़, ८. चऊरिन्द्रिय पिंड़, ९. पंचेन्द्रिय पिंड़ और १०. पात्र के लिए लेप पिंड़ । सचित्त पिंड़ और मिश्र पिंड़-लेप पिंड़ के अलावा नौ-नौ प्रकार से । पृथ्वीकाय से पंचेन्द्रिय तक पिंड़ तीन प्रकार से। सचित्त जीववाला, मिश्र जीवसहित और जीवरहित, अचित्त जीव रहित ।

सूत्र – ५५४-५५९

पृथ्वीकाय पिंड़–सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से सचित्त और व्यवहार से सचित्त, निश्चय से सचित्त, रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि व्यवहार से सचित्त । जहाँ गोमय – गोबर आदि न पड़े हो सूर्य की गर्मी या मानव आदि का आना-जाना न हो ऐसा जंगल आदि । मिश्र पृथ्वीकाय–क्षीरवृक्ष, वड़, उदुम्बर आदि पेड़ के नीचे का हिस्सा, यानि पेड़ के नीचे छाँववाला बैठने का हिस्सा मिश्र पृथ्वीकाय होता है । हल से खेड़ी हुई जमी आर्द्र हो तब तक गीली मिट्टी एक, दो, तीन प्रहर तक मिश्र होती है । ईंधण ज्यादा हो पृथ्वी कम हो तो एक प्रहर तक मिश्र । ईंधन कम हो पृथ्वी ज्यादा हो तो तीन प्रहर तक मिश्र दोनों समान हो तो दो प्रहर तक मिश्र । अचित्त पृथ्वीकाय – शीतशस्त्र, उष्णशस्त्र, तेल, क्षार, बकरी की लींड़ी, अग्नि, लवण, कांजी, घी आदि से वध की हुई पृथ्वी अचित्त होती है । अचित्त पृथ्वीकाय का उपयोग – लूता स्फोट से हुए दाह के शमन के लिए शेक करने के लिए, सर्पदंश पर शेक आदि करने के लिए अचत्त नमक का और बीमारी आदि में और काऊस्सग्ग करने के लिए, बैठने में, उठने में, चलने में आदि काम में उसका उपयोग होता है ।

सूत्र – ५६०-५७४

अप्काय पिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से और व्यवहार से, निश्चय से सचित्त – घनोदधि आदि करा, द्रह सागर के बीच का हिस्सा आदि का पानी । व्यवहार से सचित्त – कुआ, तालाब, बारिस आदि का पानी । मिश्र अप्काय – अच्छी प्रकार न ऊबाला हुआ पानी जब तक तीन ऊंबाल न आए तब तक मिश्र, बारिस का पानी पहली बार भूमि पर गिरने से मिश्र होता है । अचित्त अप्काय – तीन ऊंबाल आया हुआ पानी पहली बार भूमि पर गिरने से मिश्र होता है । अचित्त अप्काय – तीन ऊंबाल आया हुआ पानी एवं दूसरे शस्त्र आदि से वध किया गया पानी, चावल का धोवाण आदि अचित्त हो जाता है । अचित्त अप्काय का उपयोग – शेक करना । तृषा छिपाना । हाथ, पाँव, वस्त्र, पात्र आदि धोने आदि में उपयोग होता है । वर्षा की शुरूआत में वस्त्र का काप नीकालना चाहिए । उसके अलावा शर्दी और गर्मी में वस्त्र का लेप नीकाले तो बकुश चारित्रवाला, विभूषणशील और उससे ब्रह्मचर्य का विनाश होता है । लोगों को शक होता है कि, उजले वस्त्र ओढ़ते हैं, इसलिए यकीनन कामी होंगे । कपड़े धोने में संपातित जीव एवं वायुकाय जीव की विराधना हो । (शंका) यदि वस्त्र का काप नीकालने में दोष रहे हैं तो फिर वस्त्र का काप ही क्यों नीकाले ? वर्षाकाल के पहले काप नीकालना चाहिए न नीकाले तो दोष । कपड़े मैले होने से भारी बने । लील, फूग बने, जूँ आदि पड़े, मैले कपड़े ओढ़ने से अजीर्ण आदि हो उससे बीमारी आए । इसलिए बारिस की मौसम की शुरूआत हो उसके पंद्रह दिन के पहले कपड़ों का काप नीकालना चाहिए । पानी ज्यादा न हो तो अन्त में झोली पड़ला का अवश्य काप नीकालना चाहिए, जिससे गृहस्थ में जुगुप्सा न हो । (शंका) तो क्या सब का बार महिने के बाद काप नीकाले ? नहीं । आचार्य और ग्लान आदि के मैले वस्त्र धो ड़ालना जिससे नींदा या ग्लान आदि को अजीर्ण आदि न हो । कपड़ों का काप किस प्रकार नीकाले ? कपड़े में जूँ आदि की परीक्षा करने के बाद । जूँ आदि हो तो उसे जयणापूर्वक दूर करके फिर काप नीकालना । सबसे पहले गुरु की उपधि, फिर अनशन किए साधु की उपधि, फिर ग्लान की उपधि, फिर नव दीक्षित साधु की उपधि, उसके बाद अपनी उपधि का काप नीकालना । धोबी की प्रकार कपड़े पटककर न धोना,

स्त्रियों की प्रकार धोके मारकर न धोना, लेकिन जयणापूर्वक दो हाथ से मसलकर काप नीकालना । काप नीकालने के बाद कपड़े छाँव में सूखाना लेकिन गर्मी में न सूखाना । एक बार काँप नीकालने का एक कल्याणक प्रायश्चित्त आता है ।

सूत्र – ५७५-५७८

अग्निकाय पिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से निश्चय से और व्यवहार से । निश्चय से सचित्त – ईंट के नीभाड़े के बीच का हिस्सा एवं बिजली आदि का अग्नि । व्यवहार से सचित्त – अंगारे आदि का अग्नि । मिश्र – तणखा । मुर्मुरादि का अग्नि । अचित्त अग्नि – चावल, कूर, सब्जी, ओसामण, ऊंबाला हुआ पानी आदि अग्नि से परिपक्व । अचित्त अग्निकाय का इस्तमाल – ईंट के टुकड़े, भस्म आदि का इस्तमाल होता है, एवं आहार पानी आदि में उपयोग किया जाता है । अग्निकाय के शरीर दो प्रकार के होते हैं । बद्धेलक और मुक्केलक। बद्धेलक – यानि अग्नि के साथ सम्बन्धित । मुक्केलक – अग्नि रूप बनकर अलग हो गए हो ऐसे आहार आदि । उसका उपयोग उपभोग में किया जाता है ।

सूत्र – ५७९

वायुकायपिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से और व्यवहार से । निश्चय से सचित्त रत्नप्रभादि पृथ्वी के नीचे वलयाकार रहा घनवात, तनुवात, काफी शर्दी में जो पवन लगे वो काफी दुर्दिन में लगनेवाला वायु आदि । व्यवहार से सचित्त – पूरब आदि दिशा का पवन काफी शर्दी और अति दुर्दिन रहित लगनेवाला पवन । मिश्र – दति आदि में भरा पवन कुछ समय के बाद मिश्र, अचित्त – पाँच प्रकार से आक्रान्त – दलदल आदि दबाने से नीकलता हुआ पवन । धंत–मसक आदि का वायु । पीलात धमण आदि का वायु । देह अनुगत–श्वासोच्छ्वास–शरीर में रहा वायु । समुर्च्छिम–पंखे आदि का वायु । मिश्र वायु–कुछ समय के बाद मिश्र फिर सचित्त, अचित्त वायुकाय का उपयोग भरी हुई मशक तैरने में उपयोग की जाती है एवं ग्लान आदि के उपयोग में ली जाती है । अचित्त वायु भरी मशक, क्षेत्र से सो हाथ तक तैरते समय अचित्त । दूसरे सौ हाथ तक यानि एक सौ एक हाथ से दो सौ हाथ तक मिश्र, दो सौ हाथ के बाद वायु सचित्त हो जाता है ।

सूत्र – ५८०-५८१

वनस्पतिकाय पिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय और व्यवहार से । निश्चय से सचित्त – अनन्तकाय वनस्पति । व्यवहार से सचित्त – प्रत्येक वनस्पति । मिश्र – मुर्झाये हुए फल, पत्र, पुष्प आदि बिना साफ किया आँटा, खंड़ित की हुई ड़ांगर आदि । अचित्त – शस्त्र आदि से परिणत वनस्पति, अचित्त वनस्पति का उपयोग – संथारो, कपड़े, औषध आदि में उपयोग होता है ।

सूत्र – ५८२-५८७

दो इन्द्रियपिंड़, तेइन्द्रियपिंड़, चऊरिन्द्रियपिंड़ यह सभी एक साथ अपने-अपने समूह समान हो तब पिंड़ कहलाते हैं । वो भी सचित्त, मिश्र और अचित्त तीन प्रकार से होते हैं । बेइन्द्रिय-चंदनक, शंख, छीप आदि औषध आदि कार्य में । तेइन्द्रिय – उधेही की मिट्टी आदि । चऊरिन्द्रिय – देह सेहत के लिए उल्टी आदि काम में मक्खी की अघार आदि । पंचेन्द्रिय पिंड़ – चार प्रकार से नारकी, तिर्यंच, मानव, देवता । नारकी का – व्यवहार किसी भी प्रकार नहीं हो सकता । तिर्यंच – पंचेन्द्रिय का उपयोग – चमड़ा, हड्डीयाँ, बाल, दाँत, नाखून, रोम, शींग, विष्टा, मूत्र आदि का अवसर पर उपयोग किया जाता है । एवं वस्त्र, दूध, दहीं, घी आदि का उपयोग किया जाता है । मानव का उपयोग – सचित्त मानव का उपयोग दीक्षा देने में एवं मार्ग पूछने के लिए होता है । अचित्त मानव की खोपरी लिबास परिवर्तन आदि करने के लिए और घिसकर उपद्रव शान्त करने के लिए मिश्र मानव का उपयोग । रास्ता आदि पूछने के लिए एवं शुभाशुभ पूछने के लिए या संघ सम्बन्धी किसी कार्य के लिए देव का उपयोग करे । इस प्रकार सचित्त – अचित्त – मिश्र । नौ प्रकार के पिंड़ की हकीकत हुई ।

सूत्र – ५८८-६४४

लेप पिंड़ – पृथ्वीकाय से मानव तक इन नौ के संयोग से उत्पन्न हुआ लेप पिंड़ होता है, किस प्रकार ? गाड़ी के अक्ष में पृथ्वी की रज लगी हो इसलिए – पृथ्वीकाय । गाडु नदी पार करते समय पानी लगा हो तो अप्काय। गाड़ा का लोहा घिसते ही अग्नि उत्पन्न हो तो तेऊकाय । जहाँ अग्नि हो वहाँ वायुकाय है इसलिए वायुकाय, अक्ष लकड़े का हो तो वनस्पतिकाय । मली में संपातिम जीव पड़े हो तो बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चऊरिन्द्रिय और रस्सी घिसते हैं इसलिए पंचेन्द्रिय । इस लेप का ग्रहण पात्रादि रंगने के लिए होता है । लेप यतनापूर्वक ग्रहण करना । गाड़ी के पास जाकर उसके मालिक को पूछकर लेप ग्रहण करना । शय्यातर की गाड़ी का लेप ग्रहण करने में शय्यातर पिंड़ का दोष नहीं लगता । लेप की अन्त तक परीक्षा करनी चाहिए । मीठा हो तो लेप ग्रहण करना चाहिए । लेप लेने गुरु महाराज को वंदन करके जाना, प्रथम नए पात्रा को लेप करना फिर पुराने पात्रा को, पुराने पात्रा का लेप नीकल गया हो तो वो गुरु महाराज को बताकर फिर लेप करे, पूछने का कारण यह है कि किसी नए साधु सूत्र-अर्थ ग्रहण करने के लिए आनेवाले हो तो पात्रा का लेप करने का निषेध कर सके या तो कोई मायावी हो तो उसकी वारणा कर सके । सुबह में लेप लगाकर पात्रा को सूखने दे, शक्ति हो तो उपवास करके लेप करे । उपवास की शक्ति न हो तो लेप किया गया पात्र दूसरों को सँभालने के लिए सौंपकर खाने के लिए जाए । दूसरों को न सौंपे और ऐसे ही रखकर जाए तो संपातिम जीव की विराधना होती है । लेप की गठरी बनाकर पातरा का रंग करे, फिर ऊंगली द्वारा नरम बनाए । लेप दो, तीन या पाँच बार लगाए । पात्रा का लेप विभूषा के लिए न करे, संयम के लिए करे । बचा हुआ लेप रूई आदि के साथ रखने में मसलकर परठवे. लेप दो प्रकार के हैं एक युक्ति लेप, दूसरा खंजन लेप । काफी चीजें मिलाकर बनता युक्ति लेप निषिद्ध है, क्योंकि उसमें संनिधि करनी पड़ती है । शर्दी में पहले और चौथे प्रहर में लेप लगाए हुए पात्रा गर्मी में न सूखाना । पहला और अन्तिम अर्ध प्रहर में लेप लगाए हुए पात्रा गर्मी में न सूखाना । यह काल स्निग्ध होने से लेप का विनाश हो जाता है । पात्रा काफी गर्मी में सूखाने से लेप जल्द सूख जाता है । पात्र तूटा हुआ हो तो मुद्रिकाबंध से एवं नावाबँध से सीना, लेकिन स्तेनबंध से मत सीना । स्तेन बंध में दोनों ओर जोड़ न दिखे उस प्रकार पात्र को भीतर से सीने से पात्र निर्बल होता है ।

सूत्र – ६४५-६४८

पिंड़, निकाय, समूह, संपिंड़न, पिंड़ना, समवाय, समवसरण, निचय, उपचय, चय, जुम्म, राशी एकार्थक नाम है इस प्रकार द्रव्यपिंड़ बताया अब भावपिंड़ बताते हैं । **भावपिंड़** – दो प्रकार से प्रशस्त और अप्रशस्त । अप्रशस्त भावपिंड़ – दो प्रकार, सात प्रकार से, आँठ प्रकार से और चार प्रकार से । दो प्रकार से – राग और द्वेष से, सात प्रकार से – इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात भय, आजीविका भय, मरण भय, अपयश भय । आँठ प्रकार से – आँठ मद के स्थान से जाति, कुल, बल, रूप, तप, सत्ता, श्रुत, फायदे से एवं आँठ कर्म के उदय से । चार प्रकार से – क्रोध, मान, माया और लोभ से पिंड़ ग्रहण करना वो अप्रशस्त पिंड़ । अप्रशस्त पिंड़ से आत्मा कर्म करके बँधता है । प्रशस्त भावपिंड़ – तीन प्रकार से । ज्ञान, दर्शन विषय, चारित्र विषय, यानि जिस पिंड़ से ज्ञान की वृद्धि हो, वो ज्ञानपिंड़ । जिस पिंड़ से दर्शन की वृद्धि हो वो दर्शनपिंड़ । चारित्र की वृद्धि करे वो चारित्र पिंड़ । ज्ञान-दर्शन और चारित्र की वृद्धि हो, इसके लिए शुद्ध आहार आदि ग्रहण करे । लेप किए गए पात्र में, आहारादि ग्रहण किए जाते हैं, वो एषणा युक्त होने चाहिए ।

सूत्र – ६४९-६७९

एषणा चार प्रकार से । नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव उसमें द्रव्य एषणा तीन प्रकार से गवेषणा, ग्रहण एषणा, ग्रास एषणा । अन्वेषणा के आँठ हिस्से । प्रमाण, काल, आवश्यक, संघाट्टक, उपकरण, मात्रक काऊस्सग्ग योग ।

प्रमाण – भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर दो बार जाना, बिना समय पर ठल्ला की शंका हुई हो तो उस समय पानी ले, भिक्षा के समय गोचरी और पानी लेना । **काल** – जिस गाँव में भिक्षा का जो समय हो उस समय जाए । समय के पहले जाए तो यदि प्रान्त द्वेषवाले गृहस्थ हो तो नीचे के अनुसार दोष बने । यदि वो साधु के दर्शन

अमंगल मानता हो तो साधु को देखते ही पराभव – अपमान करे, नींदा करे, मारे । यह साधु पेट भरने में ही मानते हैं, सुबह-सुबह नीकल पड़े आदि । भिक्षा का समय होने के बाद गोचरी के लिए जाए तो यदि गृहस्थ सरल हो तो घर में कहे कि, अब से इस समय पर रसोई तैयार हो ऐसा करना इससे उद्गम आधाकर्म आदि दोष होते हैं या साधु के लिए आहार आदि रहने दे, गृहस्थ प्रान्त हो या बुराई करे कि, क्या यह भिक्षा का समय है ? नहीं सुबह में नहीं दोपहर में ? समय बिना भिक्षा के लिए जाने से काफी घूमना पड़े इससे शरीर को क्लेश हो । भिक्षा के समय से पहले जाए तो । यदि भद्रक हो तो रसोई जल्द करे, प्रान्त हो तो हिलना आदि करे । **आवश्यक** – ठल्ला मात्रादि की शंका दूर करके भिक्षा के लिए जाना । उपाश्रय के बाहर नीकलते ही, 'आवस्सहि' कहना । **संघाट्टक** – दो साधु का साथ में भिक्षा के लिए जाना, अकेले जाने में कईं दोष की सँभावना है । स्त्री का उपद्रव हो या कुत्ते, प्रत्यनीक आदि से उपघात हो ।

साधु अकेला भिक्षा के लिए जाए उसके कारण – मैं लब्धिमान हूँ इसलिए अकेला जाए, भिक्षा के लिए जाए वहाँ धर्मकथा करने लगे इसलिए उनके साथ दूसरे साधु न जाए । मायावी होने से अकेला जाए । अच्छा अच्छा बाहर खा ले और सामान्य गोचरी वसति में लाए इसलिए साथ में दूसरे साधु को न ले जाए । आलसी होने से अकेला गोचरी लाकर खाए । लुब्ध होने से दूसरा साधु साथ में हो तो विगई आदि न माँग सके इसलिए, निर्धमि होने से अनेषणीय ग्रहण करे, इसलिए अकेला जाए । अकाल आदि कारण से अलग-अलग जाए तो भिक्षा मिल सके इसलिए अकेले जाए । आत्माधिष्ठित यानि खुद को जो मिले उसका ही उपयोग करे इसलिए अकेला जाए । लड़ाकु हो तो उसके साथ कोई न जाए । उपकरण उत्सर्ग से सभी उपकरण साथ में ले जाकर भिक्षा के लिए जाए। सभी उपकरण साथ में लेकर भिक्षा के लिए घूमने में समर्थ न हो तो पात्रा, पड़ला, रजोहरण, दो वस्त्र (एक सूती-दूसरा ऊनी) और ड़ंड़ा लेकर गोचरी के लिए जाए । **मात्रक** – पात्रा के साथ दूसरा मात्रक लेकर भिक्षा के लिए जाए । जिसमें सहसा भिक्षा लाभ आचार्य आदि की सेवा आदि फायदे भाष्यकारने बताए हैं । **काऊस्सग्ग** – उपयोग करावणियं का आँठ श्वासोच्छ्वास का काउस्सग्ग करके आदेश माँगे, 'संदिसह' आचार्य कहे 'लाभ' साधु कहे, कहंति (कहंलेसु) आचार्य कहे, 'तहति' (जहा गहिअपुव्वसाहूहिं) **योग** फिर कहे कि आवस्सियाए जस्स जोगो जो-जो संयम के लिए जरुरी होगा वो-वो मैं ग्रहण करूँगा ।

अपवाद – आचार्य, ग्लान, बाल, तपस्वी आदि के लिए दो से ज्यादा गोचरी के लिए जाए । जाने के बाद ठल्ला मात्रा की शंका हो जाए तो यतनापूर्वक गृहस्थ की अनुमति लेकर शंका दूर करे । साथ में गोचरी के लिए घूमने से समय लगे ऐसा न हो तो दोनो अलग हो जाए । एकाकी गोचरी के लिए गए हो और शायद स्त्री, भोग के लिए बिनती करे, तो उसे समझाए कि 'मैथुन सेवन से आत्मा नरक में जाती है ।' इत्यादि समझाने के बावजूद भी न छोड़े तो बोले कि 'मेरे महाव्रत गुरु के पास रखकर आऊं ।' ऐसा कहकर घर के बाहर नीकल जाए । वो जाने न दे तो कहे कि कमरे में मेरे व्रत रख दूँ । फिर कमरे में जाकर गले में फाँसी लगाए । यह देखकर भय से उस स्त्री के मोहोदय का शमन हो जाए और छोड़ दे । ऐसा करने के बावजूद भी शायद उस स्त्री के मोहोदय का शमन न हो तो गले में फाँसी खाकर मर जाए । लेकिन व्रत का खंड़न न करे । इस प्रकार स्त्री की यतना करे । कुत्ते, गाय आदि की ड़ंड़े के बदले यतना करे । प्रत्यनीक विरोधी के घर में न जाना, शायद उसके घर मे प्रवेश हो जाए और प्रत्यनीक पकड़े तो शोर मचाए जिससे लोग इकट्ठे होने से वहाँ से नीकल जाए ।

सूत्र – ६८०-६८८

भिक्षा ग्रहण करते यतना – भिक्षा ग्रहण करते ही किसी जीव की विराधना न हो उसका उपयोग रखे । कोई निमित्तादि पूछे तो बताए कि मैं नहीं जानता । हिरण्य, धन आदि रहा हो वहाँ न जाए । पूर्वे कहने के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करे । उद्गमादि दोष रहित आहार आदि की गवेषणा करना । अशुद्ध संसक्त आहार पानी आ जाए तो मालूम होते ही तुरन्त परठवे ।

सूत्र – ६८९-७०३

दूसरे गाँव में गोचरी के लिए जाए तो भिक्षा का समय हुआ है या नहीं ? वो किसको किस प्रकार पूछे ? तरुण, मध्यम और स्थविर । हर एक में स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन सबमें पहले कहा गया है । उस अनुसार यतनापूर्वक पूछना । भिक्षा का समय हो गया हो तो पाँव पूजकर गाँव में प्रवेश करे । गाँव में एक समाचारीवाले साधु हो तो उपकरण बाहर रखकर भीतर जाकर द्वादशावर्त्त वंदन करे । फिर स्थापनादि कुल पूछकर गोचरी के लिए जाए । भिन्न समाचारीवाले साधु सामने मिले तो थोभ वंदन (दो हाथ जोड़कर) करे छह जीवनिकाय की रक्षा करनेवाला साधु भी यदि अयतना से आहार, निहार करे या जुगुत्सित ऐसी म्लेच्छ, चंड़ाल आदि कुल में से भिक्षा ग्रहण करे वो तो बोधि दुर्लभ करता है । श्री जिनशासन में दीक्षा देने में वसति करने में या आहार पानी ग्रहण करने में जिसका निषेध किया है उसका कोशीशपूर्वक पालन करना । यानि ऐसे निषिद्ध मानव को दीक्षा न देना निषिद्ध स्थान की वसति न करनी ऐसे निषिद्ध घर में से भिक्षा ग्रहण न करना ।

सूत्र – ७०४-७०८

जो साधु जैसे-तैसे जो कुछ भी मिले वो दोषित आहार उपधि आदि ग्रहण करता है उस श्रमणगुण से रहित होकर संसार बढ़ाता है । जो प्रवचन से निरपेक्ष, आहार आदि में निःशुक, लुब्ध और मोहवाला बनता है । उसका अनन्त संसार श्री जिनेश्वर भगवंत ने बताया है इसलिए विधिवत् निर्दोष आहार की गवेषणा करनी । गवेषणा दो प्रकार की है । एक द्रव्य गवेषणा, दूसरी भाव गवेषणा ।

सूत्र – ७०९-७२३

द्रव्य गवेषणा का दृष्टांत । वसंतपुर नाम के नगर में जितशत्रु राजा की धारिणी नाम की रानी थी । वो एक बार चित्रसभा में गई, उसमें सुवर्ण पीठवाला मृग देखा । वो रानी गर्भवाली थी इसलिए उसे सुवर्ण पीठवाले मृग का माँस खाने की ईच्छा हुई । वो ईच्छा पूरी न होने से रानी सूखने लगी । रानी को कमझोर होते देखकर राजा ने पूछा कि, तुम क्यों सूख रही हो, तुम्हें क्या दुःख है ? रानीने सुवर्णमृग का माँस खाने की ईच्छा की । राजाने अपने आदमीओं को सुवर्णमृग पकड़कर लानेका हूकम किया । लोगोंने सोचा कि, सुवर्णमृग को श्रीपर्णी फल काफी प्रिय होते हैं । लेकिन अभी उन फलों की मौसम नहीं चल रही, इसलिए नकली फल बनाकर जंगल में गए और वहाँ वो नकली फल के अलग-अलग ढैर करके पेड़ के नीचे रखा । मृग ने यह देखा, नायक को बात की, सभी वहाँ आए, नायक ने वो फल देखे और सभी मृगों को कहा कि किसी धूतारेने हमें पकड़ने के लिए यह किया है, क्योंकि हाल में इनकी मौसम नहीं है । शायद तुम ऐसा कहोगे की बिना मौसम के भी फल आते हैं । तो भी पहले किसी दिन इस प्रकार ढैर नहीं हुए थे । यदि पवन से इस प्रकार ढैर हो गए होंगे ऐसा लगता हो तो पहले भी पवन चलता था लेकिन ऐसे ढैर नहीं हुए थे । इसलिए वो फल खाने के लिए कोई न जाए । इस प्रकार नायक की बात सुनकर कुछ मृग तो फल खाने के लिए न गए, जब फल खाने लगे तब राजा के आदमीओंने उन्हें पकड़ लिया । इसलिए उनमें से कुछ मर गए और कुछ बँध गए । जिसने वो फल नहीं खाए वो सुखी हो गए, मरजी से वन में घूमने लगे ।

भाव गवेषणा का दृष्टांत । **(निर्युक्ति में यहाँ धर्मरुचि अणगार का दृष्टांत है ।)** किसी महोत्सव अवसर पर काफी साधु आए थे । किसी श्रावक ने या तो किसी भद्रिक पुरुषने साधु के लिए भोजन तैयार करवाया । और दूसरे लोगों को बुलाकर भोजन देने लगे, उनके मन में यह था कि, यह देखकर साधु आहार लेने के लिए आएंगे । आचार्य को इस बात का किसी भी प्रकार पता चल गया, इसलिए साधुओं को कहा कि, 'वहाँ आहार लेने के लिए मत जाना, क्योंकि वो आहार आधाकर्मी है ।' कुछ साधु वहाँ आहार लेने के लिए न गए, लेकिन ज्यों-त्यों कुल में से गोचरी लेकर आए, जब कुछ साधु ने आचार्य का वचन ध्यान में न लिया और वो आहार लाकर खाया । जिन साधुओं ने आचार्य भगवंत का वचन सुनकर, वो आधाकर्मी आहार न लिया, वो साधु श्री तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा के आराधक बने और परलोक में महासुख पानेवाले बने । जो जो साधुने आधाकर्मी आहार खाया वो साधु श्री जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा के विराधक बने और संसार बढ़ानेवाले बने । इसलिए साधु को निर्दोष आहार पानी

आदि की गवेषणा करनी चाहिए । दोषित आहार पानी आदि का त्याग करना चाहिए । क्योंकि निर्दोष आहार आदि के ग्रहण से संसार का शीघ्र अन्त होता है ।

सूत्र – ७२४-७२८

ग्रहण एषणा चार प्रकार से – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। द्रव्य ग्रहण एषणा एक जंगल में कुछ बंदर रहते थे । एक दिन गर्मी में उस जंगल के फल, पान आदि सूखे हुए देखकर बड़े बंदरने सोचा कि, दूसरे जंगल में जाए । दूसरे अच्छे जंगल की जाँच करने के लिए अलग-अलग दिशा में कुछ बंदरों को भेजा । वो बंदर जाँच करके आए फिर एक सुन्दर जंगल में सभी बंदर गए । उस जंगल में एक बड़ा द्रह था । यह देखकर सभी बंदर खुश हो गए । बड़े बंदर ने उस द्रह की चारों और जाँच की, तो उस द्रह में जाने के पाँव के निशान थे, लेकिन आने के पाँव के निशान दिखते न थे । इसलिए बड़े बंदर ने सभी बंदरों को इकट्ठा करके कहा कि, इस द्रह से सावध रहना, किनारे पर या उसमें जाकर पानी मत पीना लेकिन पोली नली के द्वारा पानी पीना । जीन बंदर ने बड़े बंदर के कहने के अनुसार किया वो सुखी हुए और जो द्रह में जाकर पानी पीने लगे वो मर गए । इस प्रकार आचार्य भगवंत महोत्सव आदि में आधाकर्मी उद्देशिक आदि दोषवाले आहार आदि का त्याग करवाते हैं और शुद्ध आहार ग्रहण करवाते हैं । जो साधु आचार्य भगवंत के कहने के अनुसार व्यवहार करते हैं वो थोड़े ही समय में सारे कर्मों का क्षय करते हैं । जो आचार्य भगवंत के वचन के अनुसार नहीं रहते वो कईं भव में जन्म, जरा, मरण के दुःख पाते हैं ।

सूत्र – ७२९-७८२

भावग्रहण एषणा के ११ द्वार बताए हैं–स्थान, दायक, गमन, ग्रहण, आगमन, प्राप्त, वशवृत, पतित, गुरुक, त्रिविध भाव । स्थान तीन प्रकार के – १. आत्म-उपघातिक, २. प्रवचन उपघातिक, ३. संयम उपघातिक । आत्म उपघातिक स्थान – गाय, भैंस आदि जहाँ हो, वहीं खड़े रहकर भिक्षा ग्रहण करने में वो गाय, भैंस आदि शींग या लात मारे, तो गिर जाए, लगे या पात्र तूट जाए । इससे छ काय जीव की विराधना हो इसलिए ऐसी जगह एवं जहाँ जीर्ण दीवार, काँटा, बील आदि हो वहाँ भी खड़े रहकर भिक्षा ग्रहण न करनी । प्रवचन उपघातिक स्थान – ठल्ला मात्रा के स्थान, गृहस्थ को स्नान करने के स्थान, खाल आदि अशुचिवाले स्थान ऐसे स्थान पर खड़े रहकर भिक्षा ग्रहण करने से प्रवचन की हीलना होती है इसलिए ऐसे स्थान पर खड़े रहकर भिक्षा ग्रहण नहीं करना ।

दायक – आँठ साल से कम उम्र का बच्चा, नौकर, वृद्ध, नपुंसक, मत्त, पागल, क्रोधीत, भूत आदि के वळगणवाला, बिना हाथ के, बिना पाँव के, अंधा, बेड़ीवाला, कोढ़वाला, गर्भवाली स्त्री, खंड़न करती, चक्की में पीसती, रूई बनाती आदि से भिक्षा ग्रहण नहीं करना । अपवाद में कोई दोष न हो तो उपयोगपूर्वक भिक्षा ग्रहण करे । गमन –भिक्षा देनेवाला, भिक्षा लेने के लिए भीतर जाए तो उस पर नीचे की जमीं और आसपास भी न देखे यदि वो जाते हुए पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि का संघट्टो करते हो तो भिक्षा ग्रहण न करे । क्योंकि ऐसी भिक्षा ग्रहण करनेमें संयमविराधना हो या देनेवाले को भीतर जाते शायद साँप ड़ँस ले, तो गृहस्थ आदि का मिथ्यात्व हो ।

ग्रहण – छोटा-नीचा द्वार हो, जहाँ अच्छी प्रकार से देख न सकते हो, अलमारी बन्द हो, दरवज्जा बंध हो, कईं लोग आते-जाते हो, गाड़ा आदि पड़े हो, वहाँ भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए । यदि अच्छी प्रकार से उपयोग रह सके ऐसा हो तो भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । आगमन – भिक्षा लेकर आनेवाले गृहस्थ पृथ्वी आदि की विराधना करते हुए आ रहा हो तो भिक्षा ग्रहण नहीं करना। प्राप्त –देनेवाले का हाथ कच्चे पानीवाला है कि नहीं ? वो देखना चाहिए । आहार आदि संसक्त है क्या ? वो देखे । भाजन गीला है क्या ? वो देखे । कच्चा पानी संसक्त या गीला हो तो भिक्षा ग्रहण नहीं करना। परावर्त –आहार पात्रमें ग्रहण करने के बाद जाँचे । योगवाला पिंड़ है या स्वाभाविक वो देखे । यदि योगवाला या बनावटी मिलावट आदि लगे तो तोड़कर देखे । न देखे तो शायद उसमें झहर मिलाया हो या कुछ कार्मण किया हो, या सुवर्ण आदि डाला हो, काँटा आदि हो तो संयमविराधना और आत्मविराधना होती है

सुवर्ण आदि हो तो वो वापस दे । गुरुक – बड़ा पत्थर आदि से ढ़ँका हुआ हो, उसे एक ओर करने जाते ही गृहस्थ को शायद इजा हो । देने का भाजन काफी बड़ा हो या भारी वजनदार हो, उसे उठाकर देने जाए तो शायद हाथ में से गिर पड़े तो गृहस्थ जल जाए या पाँव में इजा हो या उसमें रखी चीज फर्श पर पड़े तो छहकाय जीव की विराधना होती है, इसलिए ऐसे बड़े या भारी भाजन से भिक्षा ग्रहण नहीं करना । त्रिविध –उसमें काल तीन प्रकार से ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षाकाल एवं देनेवाले तीन प्रकार से – स्त्री, पुरुष और नपुंसक, वो हर एक तरुण, मध्यम और स्थविर । नपुंसक शीत होते हैं । स्त्री उष्मावाली होती है । पुरुष शीतोष्ण होते हैं । उनमें पुरःकर्म, ऊदकार्द्र, सस्निग्ध तीन होते हैं । उन सबमें सचित्त, अचित्त और मिश्र तीन प्रकार से होते हैं । पुरःकर्म और उपकार्द्र में भिक्षा ग्रहण न करना । सस्निग्ध में यानि मिश्र और सचित्त पानीवाले हाथ हो उस हाथ में ऊंगली, रेखा और हथेली को आश्रित करके सात हिस्से करे । उसमें काल और व्यक्ति भेदसे निम्न रितिसे यदि सूखे हुए हों, तो ग्रहण किया जाए

नाम	गर्मी में	शर्दी में	वर्षा में
तरुण स्त्री के	१ हिस्सा	२ हिस्से	३ हिस्से
मध्यम स्त्री के	२ हिस्से	३ हिस्से	४ हिस्से
वृद्धा स्त्री के	३ हिस्से	४ हिस्से	५ हिस्से
तरुण पुरुष के	२ हिस्से	३ हिस्से	४ हिस्से
मध्यम पुरुष के	३ हिस्से	४ हिस्से	५ हिस्से
वृद्ध पुरुष के	४ हिस्से	५ हिस्से	६ हिस्से
तरुण नपुंसक	३ हिस्से	४ हिस्से	५ हिस्से
मध्यम नपुंसक	४ हिस्से	५ हिस्से	६ हिस्से
वृद्ध नपुंसक	५ हिस्से	६ हिस्से	७ हिस्से

सूत्र – ७८३-८११

भाव – लौकिक और लोकोत्तर दोनों में प्रशस्त और अप्रशस्त । लौकिक यानि सामान्य लोगों में प्रचलित । लोकोत्तर यानि श्री जिनेश्वर भगवंत के शासन में प्रचलित । प्रशस्त यानि मोक्षमार्ग में सहायक । अप्रशस्त यानि मोक्षमार्ग में सहायक नहीं । लौकिक दृष्टांत – किसी गाँव में दो भाई अलग-अलग रहते थे । दोनों खेती करके गुझारा करते थे । एक को अच्छी स्त्री थी । दूसरे को बूरी । जो बूरी स्त्री थी, वो सुबह जल्दी उठकर हाथ, मुँह आदि धोकर अपनी देख-भाल करती थी, लेकिन नौकर आदि की कुछ देख-भाल न करे, और फिर उनके साथ कलह करती । इसलिए नौकर आदि सब चले गए । घर में रहा द्रव्य आदि खत्म हो गया । यह लौकिक अप्रशस्त हिस्सा । जब कि दूसरे की स्त्री, वो नोकर आदि की देख-भाल रखती, समय पर खाना देती । फिर खुद खाती। कामकाज करने में प्रेरणा देती । इसलिए नोकर अच्छी प्रकार से काम करते थे काफी फसल उत्पन्न हुई थी और घर धन-धान्य से समृद्ध हुआ । यह लौकिक प्रशस्त भाव । लोकोत्तर, प्रशस्त, अप्रशस्त – जो साधु संयम के पालन के लिए आहार आदि ग्रहण करते हैं । लेकिन अपना रूप, बल या देह की पुष्टि के लिए आहार ग्रहण करे, आचार्य आदि की भक्ति न करे । वो ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आराधक नहीं हो सकता । यह लोकोत्तर अप्रशस्तभाव । बियालीस दोष से रहित शुद्ध आहार ग्रहण करने के बाद वो आहार देखकर जाँच कर लेना । उसमें काँटे, संसक्त आदि हो, तो उसे नीकालकर – परठवी उपाश्रय में जाए । (*निर्युक्ति क्रमांक ७९४-७९७ गाथा में गाँव काल भाजन का पर्याप्तपन आदि कथन भी किया है ।*) उपाश्रय में प्रवेश करते ही पाँव पूंजकर तीन बार निसीहि कहकर, नमो खमासमणाणं कहकर, सिर झुकाकर नमस्कार करे । फिर यदि ठल्ला – मात्रा की शंका हो, तो पात्रा दूसरे को सौंपकर शंका दूर करके काऊस्सग्ग करना चाहिए ।) (*मुहपत्ति रजोहरण चोलपट्टक आदि किस प्रकार रखे आदि विधान निर्युक्ति गाथाक्रम ८०३-८०४-८०५ में हैं ।*) काऊस्सग्ग में गोचरी में जो किसी दोष लगे हो उसका चिन्तवन

करना । उपाश्रय में से नीकले तब से लेकर उपाश्रय में प्रवेश करे तब तक के दोष मन में सोच ले । फिर गुरु को सुनाए । यदि गुरु स्वाध्याय करते हो, सो रहे हो, व्याक्षिप्त चित्तवाले हो, आहार या निहार करते हो तो आलोचना न करे । लेकिन गुरु शान्त हो, व्याक्षिप्त चित्तवाले न हो तो गोचरी के सभी दोष की आलोचना करे ।

सूत्र – ८१२-८२२

गोचरी की आलोचना करते नीचे के छह दोष नहीं लगाना चाहिए । **नट्ठं** – गोचरी आलोवता हाथ, पाँव, भृकुटि, सिर, आँख आदि के विकार करना । **बलं** – हाथ और शरीर को मुड़ना । **चलं** – आलस करते आलोचना करनी या ग्रहण किया हो उससे विपरीत आलोचना करनी वो । **भासं** – गृहस्थ की बोली से आलोचना करनी वो । **मूकं** – चूपकी से आलोचना करनी । **ढड्ढरं** – चिल्लाकर आलोचना करनी ।

ऊपर के अनुसार दोष न ले । उस प्रकार आचार्य के पास या उनके संमत हो उनके पास आलोचना करे । समय थोड़ा हो, तो संक्षेप से आलोचना करे । फिर गोचरी बताने से पहले अपना मुँह, सिर प्रमार्जन करना और ऊपर नीचे आसपास नजर करके फिर गोचरी बतानी । क्योंकि उद्यान बगीचा आदि में उतरे हो वहाँ ऊपर से फल, पुष्प आदि न गिरे, नीचे फल आदि हो, उसकी जयणा कर सके, आसपास में बिल्ली-कुत्ता हो तो तराप मार के न जाए । गोचरी बताकर अनजाने में लगे दोष की शुद्धि के लिए आँठ श्वासोच्छ्वास (एक नवकार का) काऊस्सग्ग करे या अनुग्रह आदि का ध्यान करे ।

सूत्र – ८२३-८३९

फिर मुहूर्त्त मात्र स्वाध्याय कर के गुरु के पास जाकर कहे, प्राघुर्णक, तपस्वी, बाल आदि को आप गोचरी दो। गुरु महाराज दे या कहे, तुम ही उनको दो । तो खुद प्राघुर्णक आदि को और दूसरे साधु को भी निमंत्रणा करे । यदि वो ग्रहण करे, तो निर्जरा का लाभ, और ग्रहण न करे तो भी विशुद्ध परिणाम से निर्जरा मिले । यदि अवज्ञा से निमंत्रित करे तो कर्मबँध करे । पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह । यह पन्नर कर्मभूमि में रहे साधु में से एक साधु की भी हीलना करने से सभी साधु की हीलना होती है । एक भी साधु की भक्ति करने से सभी साधु की भक्ति होती है । (सवाल) एक हीलना से सबकी हीलना और एक की भक्ति होकर सब की भक्ति कैसे होगी ? ज्ञान, दर्शन, तप और संयम साधु के गुण हैं । यह गुण जैसे एक साधु में हैं, ऐसे सभी साधु में हैं । इसलिए एक साधु की नींदा करने से सभी साधु के गुण की नींदा होती है और एक साधु की भक्ति, पूजा, बहुमान करने से पंद्रह कर्मभूमि में रहे सभी साधु की भक्ति, पूजा, बहुमान होता है । उत्तम गुणवान साधु की हंमेशा वैयावच्च आदि करने से, खुद को सर्व प्रकार से समाधि मिलती है । वैयावच्च करनेवाले की एकान्त कर्म निर्जरा का फायदा मिलता है । साधु दो प्रकार के हो, कुछ मांड़ली में उपयोग करनेवाले हो और कुछ अलग-अलग उपयोग करनेवाले । जो मांड़ली में उपयोग करनेवाले हो, वो भिक्षा के लिए गए साधु आ जाए तब सबके साथ खाए । तपस्वी, नवदीक्षित, बाल, वृद्ध आदि हो वो, गुरु की आज्ञा पाकर अलग खा ले । इस प्रकार ग्रहण एषणा विधि धीर पुरुष ने की है ।

सूत्र – ८४०-८४५

ग्रास एषणा दो प्रकार से – द्रव्य और भाव ग्रास एषणा । द्रव्यग्रास एषणा – एक मछवारा मछलियाँ पकड़ने के गल-काँटे में माँसपिंड़ भराकर द्रह में ड़ालता था । वह बात वो मछली को पता है, इससे वो मछली काँटे पर का माँसपिंड़ आसपास से खा जाती है, फिर वो गल हीलाती है, इसलिए मछेरा मछली उसमें फँसी हुई मानकर, उसे बहार नीकालता है, तो कुछ नहीं होता । इस प्रकार बार-बार वो मछली माँस खा जाती है, लेकिन गल में नहीं फँसती । यह देखकर मछेरा सोच में पड़ जाता है । सोच में पड़े उस मछेरे को मछली कहने लगे कि, एक बार मैं प्रमाद में थी वहाँ एक बग ने मुझे पकड़ा । 'बग भक्ष उछालकर फिर नीगल जाता है ।' इसलिए उस बग ने मुझे उछाला इसलिए मैं टेढ़ी होकर उसके मुँह में गिरी । इस प्रकार तीन बार टेढ़ी गिरी इसलिए बग ने मुझे छोड़ दिया ।

एक दिन मैं सागर में गई, तब मछेरे ने मछलियाँ पकड़ने के लिए सादडी रखी थी । बाढ़ आने पर

मछलियाँ उसमें फँस जाए । एक बार मैं उसमें फँस गई । तब सादड़ी के सहारे से बाहर नीकल गई । इस प्रकार मैं तीन बार उसमें से नीकल गई । इक्कीस बार जाल में फँसने से मैं जमीं पर छिप जाती इसलिए बच जाती। एकबार मैं थोड़े से पानी में रहती थी, उस समय पानी सूख गया । मछलियाँ जमीं पर चल नहीं सकती थीं, इसलिए उनमें से काफी मछलियाँ मर गईं । कुछ जिन्दा थी, उसमें मैं भी थी । वहाँ एक मछवारा आया और हाथ से पकड़-पकड़कर मछलियाँ सूई में पिरोने लगा तब मुझे हुआ कि, जरुर अब मर जाएंगे 'जब तक बींधा नहीं गया, तब तक किसी उपाय करूँ कि जिससे बच शके' ऐसा सोचकर पिरोई हुई मछलियों के बीच जाकर वो सूई मुँह से पकड़कर मैं चीपक गई । मछेरे ने देखा कि सभी मछलियाँ पिरोई हुई हैं, इसलिए वो सूई लेकर मछलियाँ धोने के लिए दूसरे द्रह में गया । इसलिए मैं पानी में चली गई ऐसा मेरा पराक्रम है । तो भी तुम मुझे पकड़ने की उम्मीद रखते हो ? तुम्हारी कैसी बेशर्मी ? इस प्रकार मछली सावधानी से आहार पाती थी । उससे छल नहीं होती थी । वो द्रव्य ग्रास एषणा ।

सूत्र – ८४६-८४८

इस प्रकार किसी दोष में छल न हो उस प्रकार से निर्दोष आहार-पानी की गवेषणा करके, संयम के निर्वाह के लिए ही आहार खाना । आहार लेने में भी आत्मा को शिक्षा दी जाए कि हे जीव ! तू बयालीस दोष रहित आहार लाया है, तो अब खाने में मूर्च्छावश मत होना, राग-द्वेष मत करना । आहार ज्यादा भी न लेना और कम भी मत लेना । जितने आहार से देह टिका रहता है, उतना ही आहार लेना चाहिए ।

सूत्र – ८४९-८५०

आगाढ़योग वहन करनेवाला – अलग उपयोग करे । अमनोज्ञ – मांड़ली के बाहर रखे हो वो अलग उपयोग करे । आत्मार्थिक – अपनी लब्धि से लाकर उपयोग करते हो तो अलग उपयोग करे । प्राघुर्णक – अतिथि आए हो उन्हें पहले से ही पूरा दिया जाए तो अलग उपयोग करे । नवदीक्षित – अभी उपस्थापना नहीं हुई है । इसलिए अभी गृहस्थवत् हो जिससे उनको अलग दे दे । प्रायश्चित्तवाले – दोष शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करते हो शबल भ्रष्ट चारित्री अलग खाए । बाल, वृद्ध – असहिष्णु होने से अलग खाए । इस प्रकार अलग खाए तो असमुद्दिशक । एवं कोढ़ आदि बीमारी हो तो – अलग खाए ।

सूत्र – ८५१-८५९

आहार उजाले में करना चाहिए । उजाला दो प्रकार का, द्रव्य प्रकाश और भाव प्रकाश । द्रव्य प्रकाश – दीपक, रत्न आदि का । भाव प्रकाश – सात प्रकार – स्थान, दिशा, प्रकाश, भाजन, प्रक्षेप, गुरु, भाव । स्थान – मांड़ली में साधु का आने-जाने का मार्ग छोड़कर और गृहस्थ न आते हो ऐसे स्थान में अपने पर्याय के अनुसार बैठकर आहार करना । दिशा – आचार्य भगवंत के सामने, पीछे, पराङ् मुख मैं न बैठना लेकिन मांड़ली के अनुसार गुरु से अग्नि या ईशान दिशा में बैठकर आहार करना । उजाला – उजाला हो ऐसे स्थान पर बैठकर आहार करना, क्योंकि मक्खी, काँटा, बाल आदि हो तो पता चले । अंधेरे में आहार करने से मक्खी आदि आहार के साथ पेट में जाए तो उल्टी, व्याधि आदि हो । भाजन – अंधेरे में भोजन करने से जो दोष लगे वो दोष छोटे मुँहवाले पात्र में खाने से देर लगे या गिर जाए, वस्त्र आदि खराब हो, इत्यादि दोष लगे इसलिए चौड़े पात्रा में आहार लेना चाहिए । प्रक्षेप – कूकड़ी के अंड़े के अनुसार नीवाला मुँह में रखना । या मुँह विकृत न हो उतना नीवाला । गुरु देख सके ऐसे खाना यदि ऐसे न खाए तो शायद किसी साधु काफी या अपथ्य उपयोग करे तो बीमारी आदि हो, या गोचरी में स्निग्ध द्रव्य मिला हो, तो वो गुरु को बताए बिना खा जाए । गुरु देख सके उस प्रकार से आहार लेना चाहिए । भाव – ज्ञान, दर्शन, चारित्र आराधना अच्छी प्रकार से हो इसलिए खाए । लेकिन वर्ण, बल, रूप आदि के लिए आहार न करे । जो साधु गुरु को दिखाकर विधिवत् खाते हैं वो साधु गवेषणा, ग्रहण एषणा और ग्रास एषणा से शुद्ध खाते हैं

सूत्र – ८६०

इस प्रकार एक साधु को खाने की विधि संक्षेप में बताई है । उसी प्रकार कईं साधु के खाने कि विधि समझ लेना । लेकिन और साधु मांड़लीबद्ध खाए ।

सूत्र – ८६१

मांड़ली करने के कारण – अति ग्लान, बाल, वृद्ध, शैक्ष, प्राघुर्णक, अलब्धिवान या असमर्थ के कारण से मांड़ली अलग करे ।

सूत्र – ८६२-८६८

भिक्षा के लिए गए हुए साधु का आने का समय हो इसलिए वसतिपालक नंदीपात्र पड़िलेहण करके तैयार रखे, साधु आकर उसमें पानी डाले, फिर पानी साफ हो जाए तो दूसरे पात्र में डाल दे । गच्छ में साधु हो उस अनुसार पात्र रखे । गच्छ बड़ा हो तो दो, तीन या पाँच नंदीपात्र रखे ।

वसतिपालक नंदीपात्र रखने के लिए समर्थ न हो या नंदीपात्र न हो, तो साधु अपने पात्र में चार अंगुल कम पानी लाए, जिससे एक दूसरे में ड़ालकर पानी साफ कर सके । पानी में चींटी, मकोड़े, कूड़ा आदि हो तो पानी गलते समय जयणापूर्वक चींटी आदि को दूर करे । गृहस्थ के सामने सुखसे पानी ले सके, आचार्य आदि भी उपयोग कर सके । जीवदया का पालन हो आदि कारण से भी पानी गलना चाहिए । साधुओंने मांड़ली में यथास्थान बैठकर सभी साधु न आए तब तक स्वाध्याय करे । कोई असहिष्णु हो तो उसे पहले खाने के लिए दे ।

सूत्र – ८६९-८७५

गीतार्थ, रत्नाधिक और अलुब्ध ऐसे मंड़ली स्थविर आचार्य की अनुमति लेकर मांड़ली में आए । गीतार्थ, रत्नाधिक और अलुब्ध इन तीन के आँठ भेद हैं । गीतार्थ, रत्नाधिक, अलुब्ध । गीतार्थ, रत्नाधिक, लुब्ध, गीतार्थ, लघुपर्याय, अलुब्ध । गीतार्थ, लघुपर्याय, अलुब्ध, अगीतार्थ, रत्नाधिक अलुब्ध, अगीतार्थ, रत्नाधिक, लुब्ध, अगीतार्थ, रत्नाधिक, लुब्ध, अगीतार्थ, लघुपर्याय, अलुब्ध, अगीतार्थ, लघुपर्याय, लुब्ध । इसमें २-४-६-८ भागा दुष्ट है । ५-७ अपवाद से शुद्ध १-३ शुद्ध है। शुद्ध मंड़ली स्थविर सभी साधुओं को आहार आदि बाँट दे । रत्नाधिक साधु पूर्वाभिमुख बैठे, बाकी साधु यथायोग्य पर्याय के अनुसार मांड़ली बद्ध बैठे । गोचरी करते समय सभी साधु साथ में भस्म का कूँड़ रखे, खाने के समय, गृहस्थ आदि भीतर न आ जाए उसके लिए एक साधु (उपवासी या जल्द खा लिया हो वो) पता रखने के लिए किनारे पर बैठे ।

सूत्र – ८७६-८८३

आहार करने की विधि – पहले स्निग्ध और मधुर आहार खाना । क्योंकि उससे बुद्धि और शक्ति बढ़ती है चित्त शान्त हो जाता है । बल-ताकत हो, तो वैयावच्च अच्छी प्रकार से कर सके और फिर स्निग्ध आहार अन्त में खाने के लिए रखा हो और परठवना पड़े तो असंयम होता है । इसलिए पहले स्निग्ध और मधुर आहार खाना चाहिए । कटक छेद–यानि टुकड़े करके खाना । प्रतरछेद – यानि ऊपर से खाते जाना । शेर भक्षित यानि एक ओर से शुरू करके पूरा आहार क्रमसर खाना । आहार करते समय आवाझ न करना । चबचब न करना । जल्दबाझी न करना । धीरे-धीरे भी मत खाए । खाते समय गिराए नहीं । राग-द्वेष नहीं रखना चाहिए । मन, वचन और काया से गुप्त होकर शान्त चित्त से आहार करना चाहिए ।

सूत्र – ८८४-८८९

उद्गम उत्पादक के दोष से शुद्ध, एषणा दोष रहित ऐसे गुड़ आदि भी आहार दृष्टभाव से ज्यादा ग्रहण करने से साधु, ज्ञान, दर्शन और चारित्र से असार होता है । जबकि शुद्धभाव से प्रमाणसर आहार ग्रहण करने से साधु ज्ञान, दर्शन और चारित्र के सार समान (कर्मनिर्जरा करनेवाले) होते हैं ।

सूत्र – ८९०-८९५

गोचरी कम हो तो क्या करे और भोजन शुद्धि किस प्रकार बनी रहे उसकी समझ यहाँ दी है । जैसे कि गोचरी तुरन्त बाँटकर गोचरी दे और धूम अंगार आदि दोष का निवारण करे आदि ।

सूत्र – ८९६-९०८

आहार करने के छह कारण – क्षुधावेदना शमन के लिए, वैयावच्च के लिए, इर्यापथिकी ढूँढ़ने के लिए, संयम पालन के लिए, देह टिकाने के लिए, स्वाध्याय के लिए । आहार न लेने के छ कारण – ताव आदि हो, राजा-स्वजन आदि का उपद्रव हो, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, जीवदया के लिए (बारिस, धुमस आदि हो) उपवास आदि तपस्या हो, देहका त्याग करने के लिए, अनशन अपनाने पर । आहार के बाद पात्रा तीन बार पानी से धोने चाहिए ।

सूत्र – ९०९-९१३

आहार बचा हो तो क्या करे ? – खाने के बाद भी आहार बचा हो तो रत्नाधिक साधु बचा हुआ आहार आचार्य महाराज को दिखाए । आचार्य कहे कि आयंबिल उपवासवाले साधु को बुलाओ । मोह की चिकित्सा के लिए जिन्होंने उपवास किया हो, जिन्होंने अठ्ठम या उससे ज्यादा उपवास किए हो, जो ग्लान हो, बुखारवाले हो, जो आत्मलब्धिक हो – उसके अलावा साधुओं को रत्नाधिक साधु कहते हैं कि, तुम्हें आचार्य भगवंत बुलाते हैं । वो साधु तुरन्त आचार्य महाराज के पास जाकर वंदन करके कहे कि, फरमाओ भगवंत । क्या आज्ञा है ? आचार्य महाराजने कहा कि यह आहार बचा है, उसे खा लो । यह सुनकर साधु ने कहा कि, खाया जाएगा उतना खाऊंगा । ऐसा कहकर खुद से खाया जाए उतना आहार खाए । फिर भी बचे तो जिसका पात्र हो वो साधु आहार परठवे । यदि खानेवाला साधु 'खाया जाएगा उतना खाऊंगा' ऐसा न बोले होते तो बचा हुआ वो खुद ही परठवे ।

सूत्र – ९१४-९१५

विधिवत् लाया हुआ और विधिवत् खाया हुआ आहार दूसरे को दे । उसके चार भेद हैं । विधिवत् ग्रहण किया हुआ और विधिवत् खाया हुआ । अविधि से ग्रहण किया हुआ और अविधि से खाया हुआ । अविधि से ग्रहण किया हुआ और अविधि से खाया हुआ । विधिवत् ग्रहण किया हुआ और उद्गम आदि दोष रहित गृहस्थ ने जैसे दिया ऐसे ही ग्रहण करके लाया गया आहार । उसके अलावा ग्रहण किया गया आहार अविधि ग्रहण कहलाता है ।

सूत्र – ९१६-९२३

अविधि भोजन – १. काकभुक्त, २. शृगालभुक्त, ३. द्रावितरस, ४. परामृष्ट । काकभुक्त – यानि जिस प्रकार कौआ विष्टा आदि में से बाल, चने आदि नीकालकर खाता है, उसी प्रकार पात्र में से अच्छी अच्छी या कुछ-कुछ चीजें नीकालकर खाना । या खाते-खाते गिराए, एवं मुँह में नीवाला रखकर आस-पास देखे । शृंगालभुक्त – लोमड़ी की प्रकार अलग-अलग जगह पर ले जाकर खाए । द्रावितरस – यानि चावल ओसामण इकट्ठे किए हो उसमें पानी या प्रवाही ड़ालकर एक रस समान पी जाए । परामृष्ट – यानि फर्क, उलट, सूलट, नीचे का ऊपर और ऊपर का नीचे करके उपयोग करे । **विधिभोजन** प्रथम उत्कृष्ट द्रव्य, फिर अनुत्कृष्ट द्रव्य फिर समीकृतरस खाए । वो विधि भोजन अविधि से ग्रहण किया हुआ और अविधि से खाया हुआ दूसरों को दे या ले तो आचार्य देनेवाले को और लेनेवाले को दोनों को गुस्सा करे । एवं एक कल्याणक प्रायश्चित्त दे । धीर पुरुषने इस प्रकार संयमवृद्धि के लिए ग्रास एषणा बताई, निर्ग्रन्थ ने इस प्रकार विधि पालन करते हुए कईं भव, संचित कर्म खपते हैं ।

सूत्र – ९२४-९४२

परिष्ठापना दो प्रकार से – जात, कमजात । जात –प्राणातिपाद आदि दोष से युक्त या आधा कर्मादि दोषवाला या लालच से लिया गया या अभियोगकृत्, वशीकरण कृत, मंत्र, चूर्ण आदि मिश्रकृत और विषमिश्रित आहार भी अशुद्ध होने से परठने में सात प्रकार के हैं । कमजात – यानि शुद्ध आहार ।

जात-पारिष्ठापनिका – मूल, गुण से करके अशुद्धि जीव हत्या आदि दोषवाला आहार, एकान्त जगह में, जहाँ लोगों का आना-जाना न हो, ऐसी समान भूमि पर जहाँ प्राघुर्णक, आदि सुख से देख सके, वहाँ एक ढ़ग करके परठवे । मूर्च्छा या लोभ से ग्रहण किया गया या उत्तरगुण से करके अशुद्ध आधाकर्मी आदि दोषवाला हो, तो उस आहार को दो ढ़ग करके परठवे, अभियोग आदि या मंत्र-तंत्रवाला हो तो ऐसे आहार को भस्म में एक दूसरे में मिलाकर परठवे। तीन बार वोसिरे वोसिरे वोसिरे कहे । अजातापारिष्ठापनिका – शुद्ध आहार बचा हो उसकी पारिष्ठापनिका अजात कहलाती है, वो आहार साधुओं को पता चले उस प्रकार से तीन ढ़ग करके परठवे । तीन बार वोसिरे वोसिरे वोसिरे बोले । इस प्रकार विधिवत् परठवे तो साधु कर्म से रखे जाते हैं ।

शुद्ध और विधिवत् लाया गया आहार कैसे बचे ? जिस क्षेत्र में रहे हो वहाँ आचार्य, ग्लान आदि को प्रायोग्य द्रव्य दुर्लभ होने से बाहर दूसरे गाँव में गोचरी के लिए गए हुए सभी साधु को प्रायोग्य द्रव्य मिल जाने से वो ग्रहण करे या गृहस्थ ज्यादा वहोरावे तो बचे । इसलिए शुद्ध ऐसा भी आहार परठवे । ऐसे शुद्ध आहार के तीन ढ़ग करे, जिसमें जिसको जरुर है वो साधु समझकर ग्रहण कर सके ।

सूत्र – ९४३-९४९

आचार्य के प्रायोग्य ग्रहण करने से गुरु को सूत्र और अर्थ स्थिर होता है, मनोज्ञ आहार से सूत्र और अर्थ का सुख से चिन्तवन् कर सकते हैं । इससे आचार्य का विनय होता है । गुरु की पूजा होती है । नवदीक्षित को आचार्य के प्रति मान होता है । प्रायोग्य देनेवाले गृहस्थ को श्रद्धा की वृद्धि होती है । आचार्य की बुद्धि और बल फैलते हैं इससे शिष्यको काफी निर्जरा होती है। इस कारणसे प्रायोग्य ग्रहण करने से आचार्य की अनुकंपा होती है आचार्य की अनुकंपा से गच्छ की अनुकंपा होती है । गच्छ की अनुकंपा से तीर्थ की अनुकंपा होती है । इसलिए प्रायोग्य ग्रहण करे । यदि आचार्य के प्रायोग्य मिलता हो, तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से उत्कृष्ट द्रव्य प्रथम ग्रहण करे, उत्कृष्ट न मिले तो यथायोग्य ग्रहण करे । ग्लानके लिए नियमा प्रायोग्य ग्रहण करे । माँगकर भी प्रायोग्य ग्रहण करे ।

सूत्र – ९५०-९५२

परठवते एक, दो, तीन ढ़ग करने के कारण –गोचरी आदि के लिए गए हुए बड़े मार्ग –अध्वनादि कल्प विहार में रहे साधुओं को शुद्ध अशुद्धादि आहार का पता चल सके या गाँव में रहे साधु को भी जरुरत हो इसलिए ।

सूत्र – ९५३-९६२

खाने के बाद ठल्ला आदि की शंका हो तो दूर अनापात आदि स्थंड़िल में जाकर वोसिरावे । कारणशास्त्र में बताने के अनुसार (*निर्युक्तिक्रम ९५७ से ९५८*) भी करे । कारणवातादि तीन शल्य दुर्धर हैं । फिर पड़िलेहण का समय हो तब तक स्वाध्याय करे ।

सूत्र – ९६३-९६७

चौथी पोरिसी (प्रहर) की शुरूआत होने पर उपवासी पहले मुहपत्ति और देह पड़िलेह कर आचार्य की उपधि पड़िलेहे उसके बाद अनशन किए हुए की, नवदीक्षित की, वृद्ध आदि की क्रमशः पड़िलेहणा करे । फिर आचार्य के पास जाकर आदेश लेकर पात्र की पड़िलेहणा करे, फिर मात्रक और अपनी उपधि पड़िलेहे अन्त में चोलपट्टा पड़िलेहे । खाया हो वो पहले मुहपत्ति, देह, चोलपट्टो पड़िलेहे फिर क्रमशः गुच्छा, झोली, पड़ला, रजस्राण फिर पात्रा पड़िलेहे । फिर आचार्य आदि की उपधि पड़िलेहे । फिर आदेश माँगकर, गच्छ सामान्य पात्रा, वस्त्र, अपरिभोग्य (उपयोग न किए जानेवाले) पड़िलेहे बाद अपनी उपधि पड़िलेहे । अन्त में पड़िलेहण करके बाँधे

सूत्र – ९६८-९७४

पड़िलेहण करने के बाद स्वाध्याय करे या सीना आदि अन्य कार्य हो तो वो करे, इस प्रकार स्वाध्याय आदि करके अन्तिम पोरिसी का चौथा हिस्सा बाकी रहे तब काल प्रतिक्रमके चौबीस मांड़ला करे । उतने में सूर्य अस्त हो। फिर सबके साथ प्रतिक्रमण करे । आचार्य महाराज धर्मकथादि करते हो, तो सभी साधु आवश्यक भूमि में

अपने-अपने यथायोग्य स्थान पर काऊस्सग्ग में रहकर स्वाध्याय करे ।

कोई ऐसा कहते हैं कि, साधु सामायिक सूत्र कहकर काऊस्सग्ग में ग्रंथ के अर्थ का पाठ करे, जब तक आचार्य न आए तब तक चिन्तवन करे । आचार्य आकर सामायिक सूत्र कहकर, दैवसिक अतिचार चिंतवे, साधु भी मन में दैवसिक अतिचार चिंतवे । दूसरे ऐसा कहते हैं कि, आचार्य के आने पर स्वाध्याय करनेवाले साधु भी आचार्य के साथ सामायिक सूत्र चिन्तवन करने के बाद अतिचार चिन्तवन करे । आचार्य अपने अतिचार दो बार चिन्तवन करे, साधु एक बार चिन्तवन करे । क्योंकि साधु गोचरी आदि के लिए गए हों तो उतने में चिन्तवन न कर सके ।

खड़े खड़े काऊस्सग्ग करने के लिए असमर्थ हो, ऐसे बाल, वृद्ध, ग्लान आदि साधु बैठकर कायोत्सर्ग करे। इस प्रकार आवश्यक पूर्ण करे । ऊंचे बढते स्वर से तीन स्तुति मंगल के लिए बोले, तब काल के ग्रहण का समय हुआ कि नहीं उसकी जाँच करे ।

सूत्र – ९७५-१००५

काल दो प्रकार के हैं – व्याघात और अव्याघात । व्याघात – अनाथ मंड़प में जहाँ वैदेशिक के साथ या खँभा आदि के साथ आते-जाते संघट्टो हो एवं आचार्य श्रावक आदि के साथ धर्मकथा करते हो तो कालग्रहण न करे । अव्याघात किसी प्रकार का व्याघात न हो तो कालग्रही और दांड़ीधर आचार्य महाराज के पास जाकर आज्ञा माँगे कि, हम कालग्रहण करे ? लेकिन यदि नीचे के अनुसार व्याघात हो तो काल ग्रहण न करे । आचार्य को न पूछा हो या अविनय से पूछा हो, वंदन न किया हो, आवस्सही न कही हो, अविनय से कहा हो, गिर पड़े, इन्द्रिय के विषय प्रतिकूल हो, दिग्मोह हो, तारे गिरे, अस्वाध्याय हो, छींक आए, उजेही लगे इत्यादि व्याघात – विघ्न आदि हो तो कालग्रहण किए बिना वापस मुड़े । शुद्ध हो तो कालग्रहण करे । दूसरे साधु उपयोग पूर्वक ध्यान रखे ।

कालग्रही कैसा हो ? प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, मोक्षसुख का अभिलाषी, पापभीरू, गीतार्थ सत्त्वशील हो ऐसा साधु कालग्रहण करे । काल चार प्रकार के – १. प्रादोषिक, २. अर्धरात्रिक, ३. वैरात्रिक, ४. प्राभातिक । प्रादेशिक काल में सबके साथ सज्झाय स्थापना करे, बाकी तीन में साथ में या अलग-अलग स्थापना करे । (यहाँ निर्युक्ति में कुछ विधि एवं अन्य बातें भी है जो परम्परा के अनुसार समझे क्योंकि विधि और वर्तमान परम्परा में फर्क है ।) ग्रीष्मकाल में तीन तारा गिरे तो शिशिरकाल में पाँच तारे गिरे तो और वर्षाकाल में सात तारे गिरे तो काल का वध होता है । वर्षाकाल में तीनों दिशाए खुली हो तो प्राभातिक और चार दिशाएं खुली हो तो तीनों कालग्रहण किया जाए । वर्षाकाल में आकाश में तारे न दिखे तो भी कालग्रहण करे । प्रादेशिक और अर्धरात्रिक काल उत्तर दिशा में, वैरात्रिक काल उत्तर या पूरब में, प्राभातिक काल पूरब में लिया जाए । प्रादेशिक काल शुद्ध हो, तो स्वाध्याय करके पहली दूसरी पोरिसी में जागरण करे, काल शुद्ध न आए तो उत्कालिक सूत्र का स्वाध्याय करे या सुने ।

अपवाद – प्रादेशिक काल शुद्ध हो, लेकिन अर्धरात्रिक शुद्ध न हो तो प्रवेदन करके स्वाध्याय करे । इस प्रकार वैरात्रिक शुद्ध न हो, लेकिन अर्ध रात्रिक शुद्ध हो तो अनुग्रह के लिए प्रवेदन करके स्वाध्याय करे । इस प्रकार वैरात्रिक शुद्ध हो और प्राभातिक शुद्ध न हो तो प्रवेदन करके स्वाध्याय करे ।

स्वाध्याय करने के बाद साधु सो जाए । इस प्रकार धीर पुरुष ने बताई हुई समाचारी बताई ।

सूत्र – १००६-१००७

उपकार करे वो उपधि कहते हैं । वो द्रव्य से देह पर उपकार करती है और भाव से ज्ञान, दर्शन, चारित्र का उपकार करता है । यह उपधि दो प्रकार की है । एक ओघ उपधि और एक उपग्रह उपधि वो दोनों गिनती प्रमाण और नाप प्रमाण से दो प्रकार से आगे कहलाएंगी उस अनुसार समझना । ओघ उपधि यानि जिसे हंमेशा धारण कर सके । उपग्रह उपधि – यानि जिस कारण से संयम के लिए धारण की जाए ।

सूत्र – १००८-१०१०

जिनकल्पि की ओघ उपधि – बारह प्रकार से बताई है । पात्रा, झोली, नीचे का गुच्छा, पात्र केसरिका,

पात्र-पड़िलेहन की मुहपत्ति, पड़ला, रजस्त्राण, गुच्छा, तीन कपड़े, ओघो और मुहपत्ति होती है । बाकी ११-१०-९-५-४-३ और अन्य जघन्य दो प्रकार से भी होती है । दो प्रकार में ओघो, मुहपत्ति, दो वस्त्र । पाँच प्रकार में ओघो, मुहपत्ति, तीन वस्त्र, नौ प्रकार में ओघो, मुहपत्ति, पात्र, झोली, नीचे का गुच्छा, पात्र-केसरिका, पड़ला, रजस्त्राण, गुच्छो और एक वस्त्र । ग्यारह प्रकार में ओघो, मुहपत्ति, पात्र, झोली, नीचे का गुच्छा, पात्र केसरिका, पड़ला, रजस्त्राण, गुच्छा और दो वस्त्र । बारह प्रकार में ओघो, मुहपत्ति, पात्र, झोली, नीचे का गुच्छा, पात्र केसरिका, पड़ला, रजस्त्राण गुच्छा और तीन वस्त्र ।

सूत्र – १०११-१०२७

स्थविर कल्पी की ओघ उपधि चौदह भेद से है । ऊपर के अनुसार बारह के अलावा, १३ मात्रक, १४ चोलपट्टो । साध्वी के लिए पच्चीस प्रकार की – पात्र, झोली, नीचे का गुच्छा, पात्र-केसरिका, पड़ला, रजस्त्राण, गुच्छा, तीन कपड़े, ओघो, मुहपत्ति, मात्रक, कमंढ़क (खाने के लिए अलग पात्र ।) अवग्रहानन्तक (गुह्य हिस्से की रक्षा करनेके लिए कोमल और मजबूत नाव समान । पट्टा (शरीर प्रमाण कटीबँध) अद्धोरूग । (आँधी जाँघ तक बिना सीए चड्डी जैसा) चलणी (जानु प्रमाण का साड़ा जैसा – नर्तकी के जैसा) दो निवसनी । अन्तर्निवसनी अर्ध साँधक तक लम्बी, बहिर्निवसनि घुंटी तक लम्बी । कूंचूक (बिना सिए) छाती ढँकने के लिए उपकक्षिका बाँई ओर से कंचुक ढँकने के लिए वेकक्षिका (उपकक्षिका और कंचुक ढँकने के लिए) संघाडी चार-दो हाथ चौड़ी समवसरण में व्याख्यान में खड़े रहकर, सिर से पाँव तक आच्छादन के लिए । स्कंधकरणी (चार हाथ के फैलाववाली, स्वरूपवान् साध्वी को खूँधी करने के लिए ।)

इन उपधि में कुछ उत्तम, कुछ मध्यम और कुछ जघन्य प्रकार की गिनी जाती है । उसके विभाग इस तरह-

सूत्र – १०२८-१०३०

जिनकल्पी की उपधि में उत्तम, मध्यम और जघन्य । उत्तम चार – तीन वस्त्र और पात्रका, मध्यम चार – झोली, पड़ला, रजस्त्राण और ओघो । जघन्य चार – गुच्छो, नीचे का गुच्छो, मुहपत्ति और पात्र केसरिका ।

स्थविरकल्पीकी उत्तम, मध्यम और जघन्य उपधि – उत्तम चार – तीन वस्त्र और पात्र । मध्यम छ –पड़ला, रजस्त्राण, झोली, चोलपट्टो, ओघो और मात्रक । जघन्य चार – गुच्छो, नीचे का गुच्छो, मुहपत्ति और पात्र केसरिका

साध्वी की उत्तम, मध्यम और जघन्य उपधि ।

उत्तम आठ – चार संघाटिका, मुख्यपात्र, स्कंधकरणी, अन्तर्निवसनी और बहिर्निवसनी, मध्यम तेरह – झोली, पड़ला, रजस्त्राण, ओघो, मात्रक, अवग्रहानन्तक, पट्टो, अद्धोरूक, चलणी, कंचूक, उत्कक्षिका, वैकक्षिका, कमढ़क । जघन्य चार – गुच्छो, नीचे का गुच्छा, मुहपत्ति और पात्र पूजने की पात्र केसरिका ।

सूत्र – १०३१-१०३७

ओघ उपधि का प्रमाण । १. पात्र, समान और गोल, उसमें अपनी तीन वेंत और चार अंगुल मध्यम प्रमाण है । इससे कम हो तो जघन्य, ज्यादा हो तो उत्कृष्ट प्रमाण गिना जाता है या अपने आहार जितना पात्र ।

वैयावच्च करनेवाले आचार्य ने दीया हुआ या अपना नंदीपात्र रखे नगर का रोध या अटवी उतरते ही आदि कारण से इस नंदीपात्र का उपयोग करे । पात्रा मजबूत, स्निग्ध वर्णवाला, पूरा गोल और लक्षणवाला ग्रहण करे । जला हुआ छिद्रवाला या झुका हुआ पात्र नहीं रखना चाहिए । छ काय जीव की रक्षा के लिए पात्र रखना पड़ता है।

सूत्र – १०३८-१०४५

लक्षणवाला – चारों ओर से समान, गोल, मजबूत, अपने स्निग्ध वर्णवाला हो ऐसा पात्र ग्रहण करना चाहिए । बिना लक्षण के – ऊंच-नीच, झुका हुआ, छिद्रवाला हो वो पात्रा नहीं रखना चाहिए । समान गोल पात्रा से फायदा हो । मजबूत पात्र से गच्छ की प्रतिष्ठा हो । व्रणरहित पात्रा से कीर्ति और आरोग्य मिले । स्निग्ध वर्णवाले

पात्रा से ज्ञान संपत्ति हो । ऊंच-नीच पात्रा से चारित्र का भेद-विनाश होता है । दोषवाले पात्रा से दीवानगी होती है । पड़घी रहित पात्रा से गच्छ और चारित्र में स्थिरता नहीं रहती । खीले जैसे ऊंचे पात्रा से गच्छ और चारित्र में स्थिरता नहीं रहती । कमल जैसे चीड़े पात्रा से अकुशल होता है । व्रणछिद्रवाले पात्रा से शरीर में गर्मी आदि होती है। भीतर या बाहर से जले हुए पात्रा से मौत होती है ।

सूत्र – १०४६

पात्रबँध – पात्रा बँधे और किनार चार अंगुल बचे ऐसे रखने चाहिए ।

सूत्र – १०४७-१०४९

दोनों गुच्छा – एवं पात्रकेसरिका इन तीनों एक वेंत और चार अंगुल जितने रखने चाहिए दोनों गुच्छ भी ऊनी के रखने चाहिए । रज आदि से रक्षा के लिए नीचे का गुच्छा, गुच्छा से पड़ला की प्रमार्जना की जाए । पात्रा प्रमार्जन के लिए छोटे नर्म सूती कपड़े की पात्रकेसरिका – पात्र मुखवस्त्रिका जो पात्रा दीठ एक एक अलग रखे ।

सूत्र – १०५०-१०५५

पड़ला – कोमल और मजबूत मौसम भेद से तीन, पाँच या सात, इकट्ठे करने से सूर्य की किरणें न दिखे ऐसे ढ़ाई हाथ लम्बे और छत्तीस अंगुल चौड़े रखना अच्छा या उससे निम्न कक्षा के हो तो ऋतुभेद से नीचे के अनुसार धारण किया जाता है ।

उत्कृष्ट मजबूत पड़ला क्रमिक ३-४-५, मध्यम (कुछ जीर्ण) पड़ला क्रमिक ४-५-६, जीर्ण पड़ला क्रमिक ५-६-७ गर्मी, शर्दी, वर्षा में रखना । भिक्षा लेने जाते हुए फूल, पत्र आदि से रक्षा करने के लिए पात्रा पर ढँकने के लिए एवं लिंग ढँकने के लिए पड़ला चाहिए ।

सूत्र – १०५६-१०५७

रजस्त्राण-पात्रा के प्रमाण में रखना । रज आदि से रक्षा के लिए प्रदक्षिणावर्त्त पात्रा को लपेटना । उसे पात्रा के अनुसार अलग रखना ।

सूत्र – १०५८-१०५९

तीन वस्त्र – शरीर प्रमाण, ओढ़ने से खँभे पर रहे । ढ़ाई हाथ चौड़े, लम्बाई में देह प्रमाण दो सूती और एक ऊनी । घास, अग्नि आदि ग्रहण न करना पड़े, एवं शर्दी आदि से रक्षा हो उसके लिए और धर्मध्यान, शुक्लध्यान अच्छी प्रकार से हो सके उसके लिए वस्त्र रखनेको भगवान ने कहा है ।

सूत्र – १०६०-१०६४

रजोहरण – मूल में घन, मध्य में स्थिर और दशी के पास कोमल दशीवाला दांड़ी – निषधा के साथ अँगूठे के पर्व में प्रदेश की ऊंगली रखने से जितना हिस्सा चौड़ा रहे उतनी चौड़ाईवाला रखे । मध्य में ड़ोर से तीन बार बाँधे । कुल बत्तीस अंगुल लम्बा । (दांड़ी चौबीस अंगुल, दशी आँठ अंगुल) हीन अधिक हो तो दोनो मिलकर बत्तीस अंगुल हो उतना रखे । लेने – रखने की क्रिया में पूंजने-प्रमार्जन के लिए एवं साधु लिंग समान रजोहरण धारण करे

सूत्र – १०६५-१०६६

मुहपत्ति – सूती एक वेंत चार अंगुल की एक और दूसरी मुख के अनुसार ढ़ँक सके उतनी वसति प्रमार्जना के समय बाँधने के लिए । संपातिम जीव की रक्षा के लिए, बोलते समय मुँह के पास रखने के लिए । एवं काजो लेने से रज आदि मुँह में न आ जाए उसके लिए दूसरी नासिका के साथ मुँह पर बाँधने के लिए ऐसे दो ।

सूत्र – १०६७-१०७४

मात्रक – प्रस्थ प्रमाण । आचार्य आदि को प्रायोग्य लेने के लिए । या ओदन सुप से भरा दो गाऊं चलकर आया हुआ साधु खा सके उतना । (*मात्रक पात्र ग्रहण की विधि भी निर्युक्तिक्रम १०७१ से १०७४ में है ।*)

सूत्र – १०७५-१०७८

चोलपट्टा – स्थविर के लिए कोमल दो हाथ लम्बा, युवान के लिए स्थूल चार हाथ का गुह्येन्द्रिय ढ़ँकने के लिए जिससे साधु का चारित्र सँभाला जाता है ।

संथारक – उत्तरपट्टक – जीव और धूल से रक्षा करने के लिए ढ़ाई हाथ लम्बा और एक हाथ चार अंगुल चौड़ा रखे । नीचे संथारिया बिछाकर उपर उत्तरपट्टो बिछाये । संथारो ऊनी और उत्तरपट्टा सूती रखे ।

सूत्र – १०७९

निषद्या –जीव रक्षा के लिए, एक हाथ चौड़ा और रजोहरण जितना लम्बा । दो निषद्या रखना, एक अभ्यंतर और दूसरा बाह्य ।

सूत्र – १०८०

औपग्रहिक उपधि वर्षाकल्प और पड़ला आत्मरक्षा एवं संयमरक्षा के लिए जो गोचरी आदि के लिए बाहर जाती हो उन्हें वर्षा में दो गुना रखने चाहिए । क्योंकि यदि एक रखे तो वो गीले हुए ओढ़ लेने से पेट का शूल आदि से शायद मर जाए, एवं अति मलीन कपड़े ओढ़ रखे हो उस पर पानी गिरे तो अप्काय जीव को विराधना और फिर बाकी की उपधि तो एक ही रखे ।

सूत्र – १०८१

कपड़े देह प्रमाण से लम्बे या छोटे जैसे भी मिले तो ऐसे ग्रहण करे, लेकिन लम्बे हो तो फाड़ न ड़ाले और छोटे हो तो सीलाई न करे ।

सूत्र – १०८२-१०८३

औपग्रहिक उपधि में हर एक साधु को दंड़ यष्टि और वियष्टि रखे एवं चर्म, चर्मकोश, छूरी, अस्त्रा, योगपट्टक और परदा आदि गुरु-आचार्य को ही औपग्रहिक उपधि में होते हैं, साधु को नहीं । इस प्रकार साधु को ओघ के अलावा तप संयम को उपकारक ऐसी उपानह आदि दूसरी औपग्रहिक उपधि समझे ।

सूत्र – १०८४-१०९५

शास्त्र में दंड़ पाँच प्रकार के होते हैं – यष्टि-देह प्रमाण पर्दा बाँधने के लिए, वियष्टि-देह प्रमाण से चार अंगुल न्यून – नासिका तक उपाश्रय के दरवाजे की आड़ में रखने के लिए होता है । दंड़ – खँभे तक के ऋतुबद्ध काल में उपाश्रय बाहर भिक्षा के लिए घूमने से हाथ में रखने के लिए । विदंड़ – काख प्रमाण वर्षाकाल में भिक्षा के लिए घूमने से ग्रहण किया जाता है । नालिका –पानी की गहराई नापने के लिए देह प्रमाण से चार अंगुल अधिक । यष्टि लक्षण – एक पर्व यष्टि हो तो तारीफवाली, दो पर्व की यष्टि हो तो कलहकारी, तीन पर्व की यष्टि हो तो फायदे मंद, चार पर्व की यष्टि हो तो मृत्युकारी । पाँच पर्व की यष्टि हो तो शान्तिकारी, रास्ते में कलह निवारण करनेवाली, छह पर्व की यष्टि हो तो कष्टकारी, सात पर्व की यष्टि हो तो निरोगी रहे । आँठ पर्व की यष्टि हो तो संपत्ति दूर करे । नौ पर्व की यष्टि हो तो जश करनेवाली । दश पर्व की यष्टि हो तो सर्व तरफ से संपदा करे । नीचे से चार अंगुल मोटी, ऊपर पकड़ने का हिस्सा आठ अंगुल उपर रखे । दुष्ट जानवर, कुत्ते, दलदल एवं विषम स्थान से रक्षा के लिए यष्टि रखी जाती है । वो तप और संयम को भी बढ़ाते हैं । किस प्रकार ? मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान पाया जाता है । ज्ञान के लिए शरीर, शरीर की रक्षा के लिए यष्टि आदि उपकरण हैं । पात्र आदि जो ज्ञान आदि के उपकार के लिए हैं, उसे उपकरण कहते हैं और जो ज्ञान आदि के उपकार के लिए न बने उसे सर्व अधिकरण कहते हैं ।

सूत्र – १०९६-११००

उद्गम उत्पादन और एषणा के दोष रहित और फिर प्रकट जिसकी पड़िलेहणा कर सके ऐसी उपधि साधु रखे । संयम की साधना के लिए उपधि रखे । उस पर मूर्च्छा नहीं रखनी चाहिए क्योंकि मूर्च्छा परिग्रह है ।

सूत्र – ११०१-१११५

आत्मभाव की विशुद्धि रखनेवाला साधु वस्त्र, पात्र आदि बाह्य उपकरण का सेवन करते हुए भी अपरिग्रही है, ऐसे त्रैलोक्यदर्शी श्री जिनेश्वर भगवंत ने कहा है । यहाँ दिगम्बर मतवाला कोई शंका करे या उपकरण होने के बावजूद भी निर्ग्रन्थ कहलाए तो फिर गृहस्थ भी उपकरण रखते हैं, इसलिए गृहस्थ भी निर्ग्रन्थ कहलाएंगे । उसके समाधान में बताते हैं कि अध्यात्म की विशुद्धि कर के साधु, उपकरण होने के बावजूद निर्ग्रन्थ कहलाते हैं । यदि अध्यात्मविशुद्धि में न मानो तो पूरा लोक जीव से व्याप्त है, उसमें नग्न घूमनेवाले ऐसे तुमको भी हिंसकपन मानना पड़ेगा ऐसे यहाँ भी आत्मभाव विशुद्धि से साधु को निष्परिग्रहत्व है । गृहस्थ में वो भावना आ सकती है इसलिए वो निष्परिग्रही नहीं होते । अहिंसकपन भी भगवंत ने आत्मा की विशुद्धि में बताया है । जैसे कि इर्यासमितियुक्त ऐसे साधु के पाँव के नीचे शायद दो इन्द्रियादि जीव की विराधना हो जाए तो भी मन, वचन, काया से वो निर्दोष होने से उस निमित्त का सूक्ष्म भी पापबँध नहीं लगता । योगप्रत्ययिक बँध हो उसके पहले समय पर बँधे और दूसरे समय में भुगते जाते हैं । जब कि प्रमत्त पुरुष से जो हत्या होती है, उसका हिंसाजन्य कर्मबंध उस पुरुष को यकीनन होता है। और फिर हत्या न हो तो भी हिंसाजन्य पापकर्म से वो बँधा जाता है । इसलिए प्रमादी ही हिंसक माना जाता है।

कहा है कि –निश्चय से आत्मा ही हिंसक है और आत्मा ही अहिंसक है, जो अप्रमत्त है वो अहिंसक है और जो प्रमत्त है वो हिंसक है । श्री जिनेश्वर भगवंत के शासन में परिणाम एक प्रधान चीज है इससे जो बाह्य क्रिया छोड़कर अकेले परिणाम को ही पकड़ते हैं, उन्हें ध्यान में रखना चाहिए कि, बाह्यक्रिया की शुद्धि बिना, परिणाम की शुद्धि भी जीव में नहीं आ सकती, इसलिए व्यवहार और निश्चय ही मोक्ष का मार्ग है ।

सूत्र – १११६

ऊपर कहे अनुसार विधिवत् उपकरण धारण करनेवाला साधु सर्व दोष रहित आयतन यानि गुण के स्थान भूत बनते हैं और जो अविधिपूर्वक ग्रहण की हुई उपधि धारण करते हैं वो अनायतन – गुण के अस्थान रूप होते हैं

सूत्र – १११७

अनायतन, सावद्य, अशोधिस्थान, कुशीलसंसर्ग, यह शब्द एकार्थक हैं – आयतन निरवद्य – शोधिस्थान, सुशीलसंसर्ग एकार्थक हैं ।

सूत्र – १११८-११३१

साधु को अनायतन स्थान छोड़कर आयतन स्थान का सेवन करना चाहिए । अनायतन स्थान दो प्रकार के – द्रव्य और भाव अनायतन स्थान । द्रव्य अनायतन स्थान – रूद्र आदि के घर आदि, भाव अनायतन स्थान, लौकिक और लोकोत्तर, लौकिक भाव अनायतन स्थान – वेश्या, दासी, तिर्यंच, चारण, शाक्यादि, ब्राह्मण आदि रहे हो एवं मुर्दाघर, शिकारी, सिपाही, भील, मछेरा आदि और लोक में दुर्गंछा के पात्र नींदनीय स्थान हो वो सभी लौकिक भाव अनायतन स्थान। ऐसे स्थान में साधु साध्वी को पलभर भी नहीं रहना चाहिए । क्योंकि पवन जैसी बदबू हो ऐसी बदबू को ले जाते हैं । इसलिए अनायतन स्थान में रहने से संसर्ग दोष लगता है । लोकोत्तर भाव अनायतन स्थान – जिन्होंने दीक्षा ली है और समर्थ होने के बावजूद भी संयमयोग की हानि करते हो ऐसे साधु के साथ नहीं रहना । और फिर उनका संसर्ग भी नहीं करना । क्योंकि आम और नीम इकट्ठे होने पर आम का मीठापन नष्ट होता है और उसके फल कटु होते हैं । ऐसे अच्छे साधु के गुण नष्ट हो और दुर्गुण आने में देर न लगे । 'संसर्ग से दोष ही लगता है' ऐसा एकान्त नहीं है । क्योंकि इख की बागान में लम्बे अरसे तक रहा नलस्तंभ क्यों मधुर नहीं होता ? एवं वैडुर्यरत्न काँच के टुकड़ों के साथ लम्बे अरसे तक रखने के बाद भी क्यों काँच जैसा नहीं होता ? जगत में द्रव्य दो प्रकार के हैं । एक भावुक यानि जिसके संसर्ग में आए ऐसे बन जाए और दूसरे अभावुक यानि दूसरों के संसर्ग में कितने भी आने के बावजूद ऐसे के ऐसे ही रहे । वैडुर्यरत्न, मणि आदि दूसरे द्रव्य से अभावुक है जब कि आम्रवृक्ष भावुक है । भावुक द्रव्य में उसके सौ वे हिस्से जितना लवण आदि व्याप्त हो, तो

पूरा द्रव्य लवण को प्राप्त करता है । चर्म–काष्ठादि के सौ वे हिस्से में भी यदि लवण स्पर्श हो जाए तो वो पूरा चर्मकाष्ठादि नष्ट हो जाता है । इस प्रकार कुशील संसर्ग साधु समूह को दूषित करता है । इसलिए कुशील संसर्ग नहीं करना चाहिए । जीव अनादि काल से संसार में घूम रहा है, इसलिए अनादि काल से परिचित होने से दोष आने में देर नहीं लगती जब गुण महा मुश्किल से आते हैं । फिर संसर्ग दोष से गुण चले जाने में देर नहीं लगती । नदी का मधुर पानी सागर में मिलने से खारा हो जाता है, ऐसे शीलवान साधु भी कुशील साधु का संग करे तो अपने गुण को नष्ट करता है ।

सूत्र – ११३२-११३५

जहाँ जहाँ ज्ञान, दर्शन और चारित्र का उपघात हो, ऐसे अनायतन स्थान को पापभीरू साधु को तुरन्त त्याग करना चाहिए । जहाँ कईं साधर्मिक (साधु) श्रद्धा संवेग बिना अनार्य हो, मूलगुण – प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का सेवन करते हो, जहाँ कईं साधु श्रद्धा-संवेग रहित हो, उत्तर गुण पिंड़विशुद्धि दोषयुक्त हो – बाह्य से वेश धारण किया है मूलगुण उत्तरगुण के दोष का सेवन करते हो उसे अनायतन कहते हैं ।

सूत्र – ११३६-११३८

आयतन किसे कहते हैं ? आयतन दो प्रकार से द्रव्य और भाव आयतन । द्रव्य–आयतन स्थान – जिन मंदिर, उपाश्रय आदि । भाव आयतन स्थान – तीन प्रकार से – ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप । जहाँ साधु शीलवान, बहुश्रुत, चारित्राचार का पालन करते हो उसे आयतन कहते हैं । ऐसे साधु के साथ बसना ।अच्छे लोगों (साधु) का संसर्ग, वो शीलगुण से दरिद्र हो तो भी उसे शील आदि गुणवाला बनाते हैं । जिस प्रकार मेरु पर्वतपर लगा घास भी सुनहरापन पाता है उसी प्रकार अच्छे गुणवालों का संसर्ग करने से खुद में ऐसे गुण न हो तो भी गुण प्राप्त होते हैं ।

सूत्र – ११३९-११४१

आयतन का सेवन करने से – यानि अच्छे शीलवान, अच्छे ज्ञानवान और अच्छे चारित्रवान साधु के साथ रहनेवाले साधु को 'कंटकपथ' की प्रकार शायद राग द्वेष आ जाए और उससे विरुद्ध आचरण हो जाए । वो प्रतिसेवन दो प्रकार से – १. मूल, २. उत्तर गुण । मूलगुण में छ प्रकार से – प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, रात्रिभोजन सम्बन्धी कोई दोष लगे । उत्तर गुण में तीन प्रकार से – उद्गम, उत्पादना और एषणा सम्बन्धी कोई दोष लग जाए । इसे प्रतिसेवन कहते हैं – प्रतिसेवन – दोष का सेवन ।

सूत्र – ११४२

प्रतिसेवना, मलिन, भंग, विराधना, स्खलना, उपघात, अशुद्धि और सबलीकरण एकार्थिक नाम हैं ।

सूत्र – ११४३

चारित्र का पालन करने से जो जो विरुद्ध आचरण हो उसे **प्रतिसेवना** कहते हैं । प्राणातिपात आदि छह स्थान और उद्गम आदि तीन स्थान में किसी भी एक स्थान में स्खलना हुई हो तो साधु को दुःख के क्षय के लिए विशुद्ध होने के लिए आलोचे ।

सूत्र – ११४४

आलोचना दो प्रकार से – मूलगुण और उत्तरगुण सम्बन्धी । यह दोनों आलोचना साधु, साध्वी वर्ग में चार कानवाली होती है । किस प्रकार ? साधु में एक आचार्य और आलोचना करनेवाला साधु, ऐसे दो के चार कान, साध्वी में एक प्रवर्तिनी और दूसरी साध्वी आलोचनाकारी करनेवाली साध्वी, ऐसे दो के मिलाकर चार कान । वो आचार्य के पास मूलगुण और उत्तरगुण को आलोचना करे दोनों के मिलकर आठ कानवाली आलोचना बने । एक आचार्य और उनके साथ एक साधु के मिलकर चार कान एवं प्रवर्तिनी और दूसरी साध्वी आलोचनाकारी ऐसे चारों के मिलकर आठ कान होते हैं । आचार्य वृद्ध हो तो छह कानवाली भी आलोचना होती है । साध्वी को आचार्य के पास आलोचना लेते समय साथ में दूसरी साध्वी जरुर रखनी चाहिए । अकेली साध्वी को कभी आलोचना नहीं करनी चाहिए । उत्सर्ग की प्रकार आलोचना आचार्य महाराज के पास करनी चाहिए । आचार्य महाराज न हो, तो

दूसरे गाँव में जाँच करके आचार्य महाराज के पास आलोचना करे । आचार्य महाराज न हो तो गीतार्थ के पास आलोचना करे । गीतार्थ भी न मिले तो यावत् अन्त में श्री सिद्ध भगवंत की साक्षी में भी यकीनन आलोचना करके आत्मशुद्धि करनी चाहिए ।

सूत्र – ११४५

आलोचना, विकटना, शुद्धि, सद्भावदायना, निंदना, गर्हा, विकुट्टणं, सल्लुद्धरण पर्यायवाची नाम हैं ।

सूत्र – ११४६

धीर पुरुषने, ज्ञानी भगवंत ने शल्योद्धार करने का फरमान किया है, वो देखकर सुविहित लोग उसका जीवन में आचरण करके अपने आत्मा की शुद्धि करते हैं ।

सूत्र – ११४७-११५२

शुद्धि दो प्रकार से – द्रव्यशुद्धि, भावशुद्धि । द्रव्यशुद्धि वस्त्र आदि को साफ करने के लिए । भावशुद्धि मूलगुण और उत्तरगुण में जो दोष लगे हों, उसकी आलोचना प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्धि करे । रूपादि छत्तीस गुण से युक्त ऐसे आचार्य को भी शुद्धि करने का अवसर आए तो दूसरों की साक्षी में करनी चाहिए । जैसे कुशल वैद्य को भी अपने आप के लिए इलाज़ दूसरों से करवाना पड़ता है । उसी प्रकार खुद को प्रायश्चित्त की विधि का पता हो तो भी यकीनन दूसरों से आलोचना करके शुद्धि करनी चाहिए । ऐसे आचार्य का पता हो तो भी यकीनन दूसरों से आलोचना करके शुद्धि करनी चाहिए । ऐसे आचार्य को भी दूसरों के आगे आलोचना की जरुरत है, तो फिर दूसरों की तो क्या बात । इस लिए हर कोइ गुरु के सामने विनयभूत अंजली, जुड़कर आत्मा की शुद्धि करे । यह सार है ।

जिन्होंने आत्मा का सर्व रजमल दूर किया है ऐसे श्री जिनेश्वर भगवंत के शासन में फरमान किया है कि, 'जो आत्मा सशल्य है उसकी शुद्धि नहीं होती । सर्व शल्य का जो उद्धार करते हैं, वो आत्मा ही शुद्ध बनता है ।'

सूत्र – ११५३

सहसा, अज्ञानता से, भय से, दूसरों की प्रेरणा से, संकट में, बिमारी की वेदना में, मूढ़ता से, रागद्वेष से, दोष लगते हैं यानि शल्य होता है । सहसा – ड़ग देखकर उठाया वहाँ तक नीचे कुछ भी न था, लेकिन पाँव रखते ही नीचे कोई जीव आ जाए आदि से । अज्ञानता से – लकड़े पर निगोद आदि हो लेकिन उसके ज्ञान बिना उसे पोछ ड़ाला इत्यादि से । भय से – झूठ बोले, पूछे तो झूठा जवाब दे इत्यादि से । दूसरों की प्रेरणा से – दूसरों ने आड़ा-टेढ़ा समझा दिया उसके अनुसार काम करे । संकट में – विहार आदि में भूख-तृषा लगी हो, तब आहार आदि की शुद्धि की पूरी जाँच किए बिना खा ले आदि से । बिमारी के दर्द में – आधाकर्मी आदि खाने से, मूढ़ता से – खयाल न रहने से । रागद्वेष से – राग और द्वेष से दोष लगते हैं ।

सूत्र – ११५४-११५५

गुरु के पास जाकर विनम्रता से दो हाथ जुड़कर जिस प्रकार से दोष लगे हों, वो सभी दोष शल्यरहित प्रकार से, जिस प्रकार छोटा बच्चा अपनी माँ के पास जैसा हो ऐसा सरलता से बोल देता है उसी प्रकार माया और मद रहित होकर दोष बताकर अपनी आत्म शुद्धि करनी चाहिए ।

सूत्र – ११५६

शल्य का उद्धार करने के बाद मार्ग के परिचित आचार्य भगवंत जो प्रायश्चित्त दे, उसे उस प्रकार से विधिवत् पूर्ण कर देना चाहिए कि जिससे अनवस्था अवसर न हो । अनवस्था यानि अकार्य हो उसकी आलोचना न करे या आलोचना लेकर पूर्ण न करे ।

सूत्र – ११५७-११६१

शस्त्र, झहर, जो नुकसान नहीं करते, किसी वेताल की साधना की लेकिन उल्टी की इसलिए वेताल, प्रतिकूल होकर दुःख नहीं देता, उल्टा चलाया गया यंत्र जो नुकसान नहीं करता, उससे काफी ज्यादा दुःख शल्य

का उद्धार – आत्मशुद्धि न करने से होता है । शस्त्र आदि के दुःख से ज्यादा से ज्यादा तो एक भव की ही मौत हो, जब कि आत्मशुद्धि नहीं करने से दुर्लभ – बोधिपन और अनन्त संसारीपन यह दो भयानक नुकसान होते हैं । इसलिए साधु ने सर्व अकार्य पाप की आलोचना करके आत्मशुद्धि करनी चाहिए । गारव रहितपन से आलोचना करने से मुनि भवसंसार समान लता की जड़ का छेदन कर देते हैं, एवं मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शन शल्य को दूर करते हैं । जिस प्रकार मजदूर को सिर पर रखे हुए बोझ को नीचे रखने से अच्छा लगता है, उसी प्रकार साधु गुरु के पास शल्य रहित पाप की आलोचना, निंदा, गर्हा करने से कर्मरूपी बोझ हलका होता है । सभी शल्य से शुद्ध बना साधु भक्त प्रत्याख्यान अनशन में काफी उपयोगवाला होकर मरणांतिक आराधना करते हुए राधा वेध की साधना करता है । इसलिए समाधिपूर्वक काल करके अपने उत्तमार्थ की साधना कर सकता है ।

सूत्र – ११६२

आराधना मेंजुडा साधु अच्छी साधना करके, समाधिपूर्वक काल करे तो तीसरे भव में निश्चय मोक्ष पाता है

सूत्र – ११६३

संयम की वृद्धि के लिए धीर पुरुष ने यह सामाचारी बताई है ।

चरणकरण में आयुक्त साधु, इस प्रकार सामाचारी का पालन करते हुए कईं भव में बाँधे हुए अनन्ता कर्म को खपाते हैं ।

४१/१ मुनि दीपरत्नसागर कृत् ओघनिर्युक्ति-मूलसूत्र-२/१-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમઃ

४१/१

ओघनिर्युक्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઇટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઇમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઇલ 09825967397